UPNUL/2013/51445 **अभिनिर्देशित** ISSN 2277-5854

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग

(आगमतन्त्र की शोधपत्रिका)

(षाण्मासिकी)

संस्थापक सम्पादक
श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी
(सीताराम कविराज)

सम्पादक मण्डल
प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी
सम्मानित आचार्य, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र
संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

श्रीविद्यासाधनापीठ
वाराणसी (उ.प्र.)

वर्ष ७ अङ्क १

श्रीविद्या साधना पीठ शिवसदन गणेश बाग, नगवा, वाराणसी के लिये प्रकाशानन्दनाथ द्वारा श्रीविद्या साधना पीठ, शिवसदन, गणेश बाग, नगवा, वाराणसी से प्रकाशित एवं स्टार लाईन भवन संख्या बी १३/९० सोनारपुरा, वाराणसी से मुद्रित।

अगस्त, २०१७

सम्पादक :
डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

प्राप्तिस्थान
प्रकाशन विभाग
श्रीविद्यासाधनापीठ
शिवसदन, गणेशबाग, नगवाँ, वाराणसी
दूरभाष : ०५४२-२३६६६२२

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

सङ्गणकटङ्कित :
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
स्टार लाईन
सोनारपुरा, वाराणसी।

मूल्य : १२५/-

नोट : इस अंक में प्रकाशित समस्त लेखों के सम्बन्ध में सभी विवाद वाराणसी न्यायालय के अधीन होंगे।

UPNUL/2013/51445 Peer Reviewed ISSN 2277-5854

ŚRĪVIDYĀ MANTRAMAHĀYOGA

Āgamic-Tāntric Research Journal

(Bi-annual)

Founder-Editor

Sri Dattātreyānandanāth

(Sitaram Kaviraj)

Editorial Board

Prof. Kamaleshdatta Tripathi

Emeritus Professor, Faculty of S.V.D.V.
BHU, Varanasi-5

Prof. Shree Kishore Mishra

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,
BHU, Varanasi-5

Dr. Rajendra Prasad Sharma

Head, Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur.

ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA

Varanasi (U.P.)

वर्ष ७ अङ्क १

Printed and Published by Prakashanand Nath on behalf of Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.
Printed at Starline, H. No.-B-13/90, Sonarpura, Varanasi and Published at Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan, Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.

August**, 2017**

Editor :
Dr. Rajendra Prasad Sharma

Publications are available at :
Publications Department
ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Shiv Sadan, Nagawa, Varanasi-221005
Ph. 0542-2366622

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854

Type Setting :
Vishal Computers, Jaipur.

Printer :
Starline, Sonarpura, Varanasi

Price : 125/-

Note : Any dispute arising on articles published in this issue shall be decided under the jurisdiction of Varanasi Court only.

विषय–सूची

	सम्पादकीय	डॉ. राजेन्द्रप्रसादशर्मा	

शोधलेख

1.	राजस्थानीय त्रिपुरसुन्दरी–स्तोत्रसाहित्य	प्रो. नीरज शर्मा	1–24
2.	श्री हरिहरानन्द सरस्वती करपात्र स्वामी द्वारा निरूपित त्रिपुरसुन्दरी शक्ति का स्वरूप	डॉ. गीतांजली शुक्ला	25–33
3.	वैदिक वाङ्मय में महिमामय मन और उसकी शक्तियों का संवर्धन	डॉ. राजकुमारी त्रिखा	34–40
4.	गीता की टीका एवं भाष्य परम्परा	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	41–44
5.	मानव शरीर में ब्रह्माण्ड शक्ति कुण्डलिनी का जागरण	आचार्य नटवरलाल जोशी	45–48
6.	शिवशक्तिरूपा श्रीविद्या	डॉ. आशीष कुमार जोशी	49–52
7.	कुण्डलिनी की सामान्य साधना एवं विविध उपाय	रामकिशोर पारीक	53–60

8.	कुण्डलिनी शक्ति का आधार योग वर्तमान भौतिकतावाद की जरूरत	डॉ. माधवी शर्मा	61–64
9.	कुण्डलिनीशक्तिसाधनाविधिर्दर्शनञ्च	डॉ. भूदेवशर्मा	65–69
10.	कुण्डलिनी शक्ति साधना एवं कवच पाठ	पं. रमेशचन्द्र शर्मा मिश्र	70–81
11.	चिकित्सा में वैदिकमन्त्रप्रयोग का औचित्य	प्रवीण कुमार शर्मा	82–87
12.	कुण्डलिनी योग की जागरण–साधनाएँ	कजोड़मल मीना	88–92
13.	कालकलादेव्या: पूजनप्रकार:	प्रो. कमलनयनशर्मा	93–99
14.	मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र के स्वरूप की विवेचना	डॉ.चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह	100–104

सम्पादकीय

सौभाग्य का विषय है कि परमपूज्य गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से *श्रीविद्यामन्त्रमहायोग* का नवीन अङ्क प्रकाशित हो रहा है। इस अङ्क के प्रथम आलेख 'राजस्थानीय त्रिपुरसुन्दरी-स्तोत्रसाहित्य' में उदयपुर के प्रख्यात प्रोफेसर नीरज शर्मा ने राजस्थान की श्रीविद्या परम्परा के स्तोत्रों का स्थाली पुलाक न्याय से विवेचन किया है जो इस परम्परा के सुदृढ़ साधकों की कर्मभूमि राजस्थान को सिद्ध करता है। इसमें विवेचित स्तोत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा साधकों के लिए परमोपलब्धि है।

द्वितीय आलेख 'श्रीहरिहरानन्दसरस्वती करपात्रस्वामी द्वारा निरूपित त्रिपुरसुन्दरी शक्ति का स्वरूप' विषय पर डॉ. गीताञ्जली शुक्ला ने गम्भीर विवेचन किया है जो मूलत: *श्रीविद्यारत्नाकर* पर आधारित है।

तृतीय आलेख 'वैदिक वाङ्मय में महिमामय मन और उसकी शक्तियों का संवर्धन' में दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर राजकुमारी त्रिखा ने गम्भीर आलेख प्रस्तुत किया है। योग के द्वारा किस प्रकार मन को एकाग्र किया जाता है। इसे वैदिक प्रमाणों के आधार पर विवेचित किया है।

चतुर्थ आलेख में 'गीता की टीका एवं भाष्य परम्परा ' में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने भगवद्गीता की समृद्धशाली टीका परम्परा एवं विविध सम्प्रदायों के भाष्य का दिङ्मात्र निर्देशन किया है, जो भगवद्गीता के सर्वशास्त्रमय गौरव को सुस्पष्ट करता है।

पञ्चम आलेख 'मानव शरीर में ब्रह्माण्ड शक्ति कुण्डलिनी का जागरण' में प्रख्यात आचार्य नटवरलाल जोशी 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्ड' सिद्धान्त के आधार पर रहस्यमयी कुण्डलिनी का तात्त्विक प्रतिपादन किया है, जो श्रीविद्या साधकों के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

षष्ठ आलेख 'शिवशक्तिरूपा श्रीविद्या' में डॉ. आशीष कुमार जोशी ने श्रीविद्या के प्राचीन साम्प्रदायिक इतिवृत्त पर प्रकाश डाला है, जो अति महत्त्वपूर्ण है।

सप्तम आलेख में श्री रामकिशोर पारीक ने 'कुण्डलिनी की सामान्य साधना एवं विविध उपाय' में योगदृष्टि से इस गम्भीर तत्त्व को समझाने की सफल चेष्टा की है जो आगमिक साधकों के लिए अवश्य ज्ञातव्य है। साधना की विविध पद्धतियों का ज्ञान भी अत्यावश्यक है।

अष्टम आलेख में डॉ. माधवी शर्मा ने कुण्डलिनी शक्ति को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करने का विनम्र प्रयास किया है।

नवम आलेख 'कुण्डलिनीशक्तिसाधनाविधिर्दर्शनञ्च' में श्रीविद्या साधक डॉ. भूदेवशर्मा ने विविध शास्त्रीय प्रमाणों से साधना विधि तथा दर्शन को सुस्पष्ट करने का अनुपम प्रयास किया है। आगमशास्त्र की दृष्टि से यह वैदुष्यपूर्ण आलेख है।

दशम आलेख 'कुण्डलिनी शक्ति साधना एवं कवच पाठ' में रमेशचन्द्र शर्मा ने कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया के प्रायोगिक पक्षों का विस्तृत विवेचन किया है तथा एक कुण्डलिनी कवच को भी मूल रूप में प्रस्तुत किया है जो तन्त्र साधकों के लिए परमोपयोगी है।

एकादश आलेख 'चिकित्सा में वैदिकमन्त्रप्रयोग का औचित्य' विषय पर प्रवीण कुमार शर्मा ने मन्त्र चिकित्सा का आधार स्पष्ट करते हुए शास्त्रीय आधार का प्रामाणिक सुविवेचन किया है।

द्वादश आलेख में कजोडमल मीणा ने 'कुण्डलिनी योग की जागरण-साधनाएँ' में विविध आगमिक पद्धतियों का विवेचन प्रस्तुत किया है।

त्रयोदश आलेख 'कालकलादेव्या: पूजनप्रकार:' में वयोवृद्ध प्रो. कमलनयन शर्मा ने काली क्रम के अनुसार कामकला का दिव्य विवेचन प्रस्तुत किया है जिससे इस क्रम को सहजता से समझने में सुविधा होगी।

अन्तिम आलेख में डॉ. चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह ने मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र विषयक सामान्य एवं आवश्यक ज्ञातव्य विषयों का निरूपण किया है।

यह अङ्क न केवल अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण सामग्री को साधकों के लिये उपलब्ध कराता है अपितु नई अनुसन्धानपरक रचनाओं के द्वारा तन्त्रशास्त्र की सार्वकालिक उपादेयता पर विचार करता है। हमें विश्वास है कि साधकवर्ग में इस अङ्क का भी यथापूर्व स्वागत होगा और यह उनके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

जो साधक इस सारस्वत यज्ञ में लेख रूपी आहुति देना चाहते हैं, वे इमेल पर 'वर्ड डाकुमेन्ट' में भेज सकते हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
सम्पादक
rajendrasharmauniraj@gmail.com

राजस्थानीय त्रिपुरसुन्दरी–स्तोत्रसाहित्य

प्रो. नीरज शर्मा

भारतीय चिन्तन की यह आस्था रही है कि दृश्यमान इस भौतिक जगत् का संचालन निश्चित नियम के अन्तर्गत बिना किसी नियन्ता के सम्भव नहीं। उस सर्वव्यापी और अनन्तशक्तिसम्पन्न परमतत्त्व को अनेक अभिधानों से अभिहित किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, महाकाली, महाशक्ति, महा सरस्वती और इनके भिन्न–भिन्न अवतार उसी परम शक्ति परमब्रह्मा का लीला प्रपंच है। संस्कारों की विभिन्नता के कारण मनुष्य का चिन्तन विभिन्न प्रकार का रहा है। इसी स्वभावगत विविधता के कारण उसकी विविध श्रद्धा उस आद्यशक्ति के विभिन्न रूपों के साथ सम्बद्ध है। उस श्रद्धा की वाचिक अभिव्यक्ति का नाम ही स्तुति है। भक्त अपने उपास्य की सर्वोच्चता, सर्वोत्कृष्टता, चारित्रिक विशिष्टता और लीलाओं का कवित्वपूर्ण भाषा में वर्णन कर भक्त कवियों ने आद्यशक्ति का विविध रूपों में गुणानुवाद, कीर्तन, स्मरण एवं अपनी रक्षा के लिए शरणागत होकर विनम्र निवेदन किया है। इस शरणागतिपूर्ण आत्मनिवेदन में उनकी इष्टदेवता के प्रति आत्मार्पण की भावना एवं ऐकान्तिकी भक्ति सन्निहित है। स्तोत्र वाङ्मयी आराधना अथवा पूजा का साहित्यिक स्वरूप है। स्तोत्र साहित्य में भक्तकवि अथवा आराधक के सभी भावों का समाश्रय अन्ततः भक्ति में होता है जहाँ वे भक्तिरस में अवगाहन कर आराध्य को साकार रूप में समक्ष जानकर उनकी लीला, नखशिखवर्णन, उनके अद्भुत एवं अलौकिक स्वरूप तथा दिव्य अवदान को अपनी शब्दमयी आराधना का विषय बनाते है।

परब्रह्म का वास्तविक स्वरूप तो निर्गुण, निराकार एवं अव्यक्त है। सृष्टि रचना, रक्षण तथा संहारादि समस्त कार्य परब्रह्म शक्ति के माध्यम से ही करते हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती भुक्ति मुक्तिप्रदात्री, महामाया, परब्रह्मस्वरूपिणी है। भद्रा, कालिका, वैष्णवी, ब्राह्मी, भुवनेश्वरी, रक्तशाम्भवी, शिवा, गौरी आदि सभी रूपों की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं, किन्तु प्रत्येक रूप से सभी रूपों को सम्बद्ध किया गया है। देवी को त्रिपुरसुन्दरी, नारायणी, भ्रमराम्बा, तारा, भवानी, विन्ध्येश्वरी, विन्ध्यवासिनी, ललिता, गौरी, मातङ्गी, भुवनेश्वरी, इन्द्राक्षी, कालिका आदि नामों से विभूषित किया गया है। क्षेमंकरी, कामेश्वरी, महाभैरवी, रक्तम्बरा, जगत्सृष्टिसंरक्षणसंहारकर्त्री, महाशक्तिरूपा तथा महानन्दरूपा है। राजस्थान प्रदेश में भगवती आद्या शक्ति त्रिपुरसुन्दरी की आराधना में सैकडों स्तोत्र लिखे गये हैं जिनमें कतिपय बीसवीं शती में प्रणीत प्रमुख स्तोत्र निम्नलिखित हैं–

1. श्रीविद्याताण्डवाष्टक–

इस स्तोत्र के रचयिता जयपुर निवासी पं. हरिकृष्ण दौर्गादत्ति हैं। यह अष्टक *संस्कृत रत्नाकर* के प्राचीन अंक में प्रकाशित हुआ है तथा इसमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्तवन है। त्रिनेत्रवाली, श्री शिवप्रिया, त्रिवर्णवर्णित, मोक्षसहित त्रिवर्ग दायिनी, तीनों भुवनों के शोकसंताप का हरण करने वाली, तीनों वेदों में जिसके वैभव का गान किया गया है ऐसी त्रिलोकसुन्दरी, श्रीविद्यास्वरूपिणी भगवती की हम वन्दना करते हैं। इस प्रकार भावभरा एक पद्य दर्शनीय है–

त्रिलोचनां त्रिलोचनप्रियां त्रिवर्णवर्णितां
चतुर्थवर्गसगंतं त्रिवर्गदानदायिनीम् ।
त्रिलोकशोकमोचनीं त्रिवेदगीतवैभवां
त्रितापतापहारिणीं त्रिलोकसुन्दरीं भजे ॥[1]

2. उमा स्तुति

इस स्तोत्र के प्रणेता जयपुर के पं. जगदीश शर्मा खाण्डल है। यह रचना *संस्कृत रत्नाकर* में प्रकाशित है।[2] इसके प्रत्येक पद्य में चतुर्थ चरण के रूप में 'मां पाहि सत्वरमुमे! पतितं भवाब्धौ' (हे उमे! भवसागर में पतित मेरी शीघ्र रक्षा करो) पंक्ति निबद्ध है। यह स्तोत्र संकटग्रस्त भक्त–पुत्र वह रक्षार्थ प्रार्थना है जिसमें वह कातर होकर एकमात्र आश्रयभूता माता से अनुकम्पा की याचना करता है। मातृ रसिकों के आनन्द के लिये कतिपय पद्य अत्यन्त दर्शनीय है—

माता त्वमेव जगतां च पिता त्वमेव
भ्राता त्वमेव च तथासि सखा त्वमेव।
विद्या त्वमेव सकलं च बलं त्वमेव
मां पाहि सत्वरमुमे! पतितं भवाब्धौ॥
त्वामन्तरा जननि! मे नहि कोऽपि गोप्ता
सज्जीभवावितुमतस्त्वरितं शिवे! माम्।
मात्रा यतः कुतनयोऽप्यनुपेक्षणीयो
मां पाहि सत्वरमुमे! पतितं भवाब्धौ॥
एवं ह्यनन्यशरणस्तव बालकोऽयं
नानाविधाभिरपि नास्ति परीक्ष्य आर्ये।
श्रुत्वेदमेव विनयस्य वचो दयालो!
मां पाहि सत्वरमुमे! पतितं भवाब्धौ ॥

3. दुर्गापुष्पाञ्जलि

दुर्गापुष्पाञ्जलि स्तोत्र काव्य के रचयिता महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी है। यह स्तोत्र ग्रन्थरूप में प्रकाशित है। इसका प्रकाशन राजस्थान पुरातवान्वेषण मंदिर जयपुर से हुआ है तथा पं. गंगाधर द्विवेदी इसके सम्पादक-व्याख्याता है। इन्होंने इस पर परिमल नामक विवृत्ति का लेखन किया है।[3]

दुर्गापुष्पाञ्जलि में दो विश्राम है तथा इनमें जगदम्बा के अनेक स्तोत्र का संकलन है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम विश्राम

(1) **परमार्थाकलन**—इस स्तोत्र में दार्शनिक दृष्टि से जीव ब्रह्म का वास्तविक अभेद बतलाते हुए एकमात्र ईश्वर की सत्ता, व्यापकता और उसके सच्चिदानन्द स्वरूप का परिचय कराया गया है। उसी के द्वारा दृश्य जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार रूप की क्रियाओं का परिणमन दिखलाया है। शक्ति और शक्तिमान् की अभिन्नता एवं ब्रह्मा-विष्णु-रूद्र आदि भेदक नामों की कल्पना और ईश्वर के नामरूप की विभिन्नता के होते हुए भी वास्तव में उनकी एकता की स्थिति का प्रतिपादन किया गया है। और इस प्रकार दर्शनों द्वारा विभिन्न भूमिका में आत्मपरीक्षण किये जाने एवं प्रस्थान-भेद के होने पर भी मौलिक रूप में उनकी एकवाक्यता का निरूपण किया गया है। कतिपय पद्य दर्शनीय है—

उपास्महे सिद्धिसमृद्धिसद्ममाहेश्वरं ज्योतिरनन्तशक्ति ।
यस्मात् परस्मादिव शासनस्य विश्वस्य जन्मस्थितिभङ्गमाहु॥
यो गीयते ब्रह्मपदेन सूत्रे वेदागमेऽपीश्वरशब्दितेन।
तमेकदेवं परमार्थतत्त्वमात्मानमात्मन्यवधारयामि॥
प्रथाकथाकारकलामुपेतो, ब्रह्मा च विष्णुश्च ततश्च रूद्रः।
यानाश्रयन्ते समवायिनीव, सरस्वती श्रीरमलापि गौरी॥4

(2) **जगदम्बा-जयवाद**—इसमें शब्द और अर्थ की सृष्टि का प्रकार, उसकी व्यापकता और उसके द्वारा प्रधान रूप से स्थूल जगत् का परिणाम बतलाया गया है। वेदान्तियों की परिभाषा में इसी को नाम और रूप की संज्ञा दी गई। शास्त्रों में वर्णित परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चारों पारिभाषिक नामों के द्वारा शब्द-ब्रह्म की विभूति के रूप में भगवती के ही विविध रूपों का चित्रण होना दिखलाया है। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होने से शब्द और अर्थ की अभिन्नता और उसकी व्यापकता का संतुलन करते हुए भगवती के शंकर की अर्धांगिनी कहलाने की यथार्थता और उपयोगिता का निदर्शन किया है और सभी प्रकार के सुख- सौभाग्य की प्रतिष्ठा का प्रधान केन्द्रबिन्दु बतलाया है। आगमोक्त शक्ति-पीठों में प्रधान माने जाने

वाले जालन्धरपीठ की अधिष्ठात्री बज्रेशी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों तरह के सम्मिलित रूपों का इसमें वर्णन प्रस्तुत किया है। कतिपय पद्य दर्शनीय है—

जय जगदम्ब! कदम्बविहारिणी! मङ्गलकारिणि! कामकले!
जय तनुशोभाकल्पितशम्पे! लसदनुकम्पे कान्तिनिधे!
जय जितकामेऽपि जनितकामे! धूर्जटिवामे वामगते!
जय जालन्धरपीठविलासिनि! दुःखविनाशिनि भक्तिवशे॥
मूले दीपककलिकाकारे! विद्यासारे! भवसि परा!
तस्मादपसृतिकलनावृद्धे! मणिपुरमध्ये पश्यन्ती।
स्वान्ते मध्यमभावाकूता कण्ठे विवता वैखरिका
जय जालन्धरपीठविलासिनि! दुःखविनाशिनि भक्तिवशे॥
क्लेशं भञ्जय रञ्जय चित्तं, वित्तं स्फारीकुरु वरदे!
नास्ति कृपानिधिरम्ब! त्वत्तो मत्तो मत्ततमो न शिवे!
जय जालन्धरपीठविलासिनि! दुःखविनाशिनि भक्तिवशे॥[5]

(3) **ईहाष्टक**—इसमें कांगडा की सुप्रसिद्ध ज्वालादेवी के ऐतिहासिक मन्दिर और वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया गया है। इनके सम्बन्ध में प्रचलित पौराणिक आख्यान, ज्वाला नाम की प्रसिद्धि और उसकी सार्थकता एवं उनकी लोकोत्तर महिमा और प्रभाव का चित्रण है। साथ ही भक्तजनोचित हृदय से और किसी बात की आकांक्षा न करते हुए एकमात्र उनके प्रति अटूट श्रद्धा और अपनी भक्ति की स्थिरता के लिए कामना की गई है। भक्त की निष्ठा का अचल रहना ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है, क्योंकि वास्तव में यही उसकी सर्वोपरि सफलता मानी जाती है। इसीलिए इस स्तोत्र के ईहाष्टक नाम की सार्थकता है। कतिपय पद्य द्रष्टव्य है—

ज्येष्ठा क्वचित् क्वचिदुदारकलाकनिष्ठा,
मध्या क्वचित् क्वचिदनुद्भवभावभव्या।
एकाप्यनेकविधया, परिभाव्यमाना
ज्वालामुखी सुमुखभावमुरीकरोतु॥
आस्तां मतिर्मम सदा तव पादमूले
तां चालयेन्न चपलं मन एतदम्ब!।
याचे, पुनः पुनरिदं प्रणिपत्यमात–
र्ज्वालामुखि! प्रणतवाञ्छितसिद्धिदे! त्वाम् ॥6

(4) **देवकालीमहिमा**—देवकाली महाकाली का ही दूसरा नाम है। प्रस्तुत महिमा में महाकाली की ही प्रशस्त महिमा का वर्णन और उनकी उपासना द्वारा प्राप्त होने वाले आगमोक्त विशेष फलों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त, स्तुति की समाप्ति में सत्त्व, रज और तम तीनों के गुण—धर्मानुसार, त्रिशक्ति के रूप में उनके अवतार का निरूपण एवं तीनों ही रूपों का आगम-सम्मत स्वरूप दिखलाया गया है। इस स्तुति की यही विशेषता है। इसके कुछ पद्य प्रस्तुत है—

ते देवकालि! कलिकर्म विनाशयन्ति
वन्दारू-संहतिषु शर्म विकासयन्ति।
ज्ञानामृतानि हृदये परिवाहयन्ति
ये तावकीनपदपङ्कजमर्चयन्ति॥
ते देवकालि! कुकृतानि निकृन्तयन्ति,
संसारदुःखनिगडानि विभञ्जयन्ति।
शान्तिं परामधिमनः परिचारयन्ति
ये त्वत्कथामृतरसान् सततं धयन्ति॥[7]

(5) **चण्डिका-स्तुति**—यह भगवती चण्डीदेवी के आश्रम का प्राकृतिक वर्णन और उनके चण्डी स्वरूप का प्रतिपादन है। उक्त स्थान गोमती के तटपर स्थित है। इस स्तोत्र में चण्डी की असाधारण महिमा का गान किया है। जो अपने समीपस्थसरोवर की शोभा को सहस्रदल कमलों के विकास के द्वारा प्रफुल्लित करके मानो अपने कृपामृत की प्रचुरता का ध्यान दिलाती है, प्रतिक्षण हर्षप्रद घटनाओं के सृजन करने के कारण अत्यन्त स्निग्ध स्वभाव वाली भयापहा माता चण्डिका की शरण लेता हूँ—

अनुग्रहरसच्छटामिव सरःश्रियं यान्तिके
विकासयति, पद्मिनीदलसहस्रं सन्दानिताम् ।
प्रतिक्षण समुन्मिषत्प्रमदमेदुरां तामहं
भजामि भयखण्डिकां सपदि चण्डिकाम्बिकाम् ॥[8]

(6) **महिषमर्दिनीगीति**—इसमें भगवती महिषमर्दिनी (महिषासुर नामक राक्षस का वध करने वाली कौशिकी) के प्रादुर्भाव से लेकर उनके महालक्ष्मीस्वरूप की परिणति तक आगमोक्त समष्टि रूप का वर्णन किया गया है। सुप्रसिद्ध मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत *सप्तशती* (दुर्गापाठ) में वर्णित प्रथम, मध्यम और उत्तमम तीनों चरित्रों की अधिष्ठात्री महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के स्वतंत्र रूपों का भी क्रमशः निदर्शन है। नवार्णमंत्र के तीनों बीजों का महत्त्व और उनके प्रतिपाद्य अर्थों का परिचय कराया गया है। सङ्गीतकला के प्रेमियों के लिए गान के रूप में उक्त गीति और अधिक महत्त्व रखती है। इसके कुछ पद्य द्रष्टव्य है—

इच्छामात्र सुपर्वीविनि:सृत
तेजः पुञ्जरचितललिताङ्गि !।
निर्गुणतो गुणभावमुपेयुषि!
जय जय विकसद्दीर्घापाङ्गि !।
ब्रह्मविष्णुशिवसृष्टिविधायिनि!
जय जय लोकालोकमहेशि!।
भक्तशोकशङ्कु उद्धृतिनिपुणे!
शरणागतसौहित्यविधात्रि॥[9]

(7) **सकलजननीस्तव**—यह भगवती त्रिपुरसुन्दरी (श्रीविद्या)के प्राकृतिक किन्तु साकार-स्वरूप का वर्णन है। इसीके साथ-साथ उनकी पूर्णविकसित अवस्था और महिमा का चित्रण किया गया है। आगम ग्रन्थों में इनको शक्ति-मण्डल की प्रधान नायिका और महाराज्ञी कहा गया है। इसीलिए इनको सकलजननी कहा जाता है। स्तोत्र-साहित्य के प्राचीन प्रमुख-स्तोत्र *पञ्चस्तवी* में भी इनकी स्तुति सकलजननी के नाम से की गई है। इसका एक पद्य प्रस्तुत है—

जननमरणजन्मत्रासघोरान्धकार-
प्रशमनकरणायाह्याया काचित्प्रदीप्तिः।
तरूणतरणिरागं म्लानिमानं नयन्ती
विहरतु मम चित्ते चन्द्रखण्डावतंसा॥[10]

(8) **सौम्याष्टक**—इसमें त्रिपुर-सुन्दरी के विविध माङ्गलिक रूपों का निरूपण किया गया हैं। शरणागत के उद्धार में भगवती की कर्तव्यपरायणता का स्मरण कराते हुए भक्त द्वारा मनोवांछित लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की पूर्ति की प्रार्थना तथा इस भाव के अनुरूप उनके सौम्य-स्वरूप का चिन्तन करना बतलाया है। इसके दो पद्य प्रस्तुत है—

महेश्वर परिग्रहे! स्तुतिपरायणानुग्रहे!
महास्फुरणनिग्रहे! निरययातना निग्रहे!।
प्रसीद सुखसंग्रहे! प्रणतदुःखभङ्गाग्रहे!
विनाशितमहाग्रहे विमलभक्तियोगग्रहे॥
महाभयनिवारिणी सकलशोकसंहारिणी!
भवाम्बुनिधितारिणी, दुरितजातविद्राविणी।
अहंमति विदारिणी पतितमण्डलोद्धारिणी
ममान्तरविहारिणी, भवतु सौम्यसञ्चारिणी॥[11]

(9) **अम्बावन्दना**—इसमें 'श्रीयन्त्र' के आगमोक्त स्वरूप का प्रतिपादन है। मूलाधार-स्वाधिष्ठान आदि षट्चक्रों के द्वारा अन्तर्याग की भावना का प्रकार एवं श्रीचक्र के अन्तर्गत आवरण देवताओं के साथ श्रीविद्या के दिव्य सौन्दर्य की सृष्टि, चिन्तामणि नामक दिव्य-आगार में उनके निवास, देवताओं द्वारा उनकी सामूहिक वन्दना तथा ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को प्रसन्न होकर महर्षि पद देने का उल्लेख किया गया है। एक पद्य प्रस्तुत है—

ऐन्द्रीं भूतिं भक्तजनेभ्यो वितरन्तीं,
ह्रींकुर्वाणां तद्विमुखेसु प्रतिवेलम् ।
श्रीँ निर्दोलां तद्भवनान्ते विदधानां
वन्देऽमन्दद्योतकदम्बां जगदम्बाम् ॥[12]

(10)**आदेशाश्वघाटी**—यह प्रधान रूप से भगवती दक्षिणा-कालिका की स्तुति है। इसमें उनके निरङ्कुश ऐश्वर्य और उच्चतम प्रभुशक्ति का प्रतिपादन किया गया है। उपासना क्षेत्र में इनकी अपनी विशेषताओं का निर्देश करते हुए विविध विद्याओं और कलाओं का इन्हें प्रधान आवास माना है। भक्त द्वारा किये गये दण्डनीय अपराधों का भी अपने सहज-सुलभ वात्सल्य भाव से मन्दस्मित रहते हुए क्षमादान कर देने का इनका लोकोत्तर साहस दिखलाया है। संस्कृत के अश्वघाटी छन्द में यह स्तुति प्रस्तुत किये जाने और साथ ही आदेश ले जाने वाले अश्वों की दौड़, का अर्थ लेकर इस स्तव का यह नामकरण किया गया है। एक पद्य प्रस्तुत है—

वामां गते, प्रकृतिरामां स्मिते, चटुलदामाञ्चलां कुचतटे
श्यामां वयस्यमितभामां वपुष्युदितकामां मृगाङ्कमुकुटे।
मीमांसिका, दुरितसीमान्तिका बहलभीमां भयापहरणे
नामाङ्कितां, द्रुतमुमां मातरं, जपनिकामांहसां निहतये॥[13]

(11) **स्वार्थाशंसनम्**—इसमें अर्धनारीश्वर एवं गुरुरूप में भगवती के साकार भाव का प्रतिपादन करते हुए उनके उपासनात्मक स्वरूप का विवेचन है। इसके साथ-साथ शास्त्र के विधि-विधान के अनुसार कष्ट-साध्य उपासना-मार्ग, का भार ले चल सकने में अपनी स्वाभाविक असमर्थता, फलतः इसके विकल्प में केवल आगमोक्त नामपारायण के सहारे अभीष्टलाभ मिल सकने की निश्चिन्तता और एतदर्थ अपेक्षित तन्मयता को अक्षुण्ण रखने की कामना की है। इस तन्मयतारूप स्वार्थ पूर्ति की कामना ही इस स्तोत्र का प्रधान लक्ष्य है, अतएव इसे 'स्वार्थाशंसन' का नाम दिया गया है। इसका एक पद्य प्रस्तुत है—

लसद्भूरिसिन्दूरपूरप्रकाशं
किमप्युद्यदुद्दाममोदप्रवाहम् ।
अकम्पानुकम्पापरीतं प्रसन्नं
भवत्या स्वरूपं ममान्तश्चकास्तु॥[14]

(12) **अन्तर्विमर्श**—इसमें मुख्यतः कुण्डलिनी शक्ति के आरोह और अवरोह के क्रम का प्रतिपादन तथा योगदर्शन में वर्णित संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधियों द्वारा उसके साक्षात्कार का दिग्दर्शन कराया है। इसके अतिरिक्त साकार और निराकार दोनों अवस्थाओं में उपासना की दृष्टि से भावना की प्रधानता, व्यापकता और उसके द्वारा विविध शक्ति के रूपों को परिणमन दिखलाया गया है। समूचा स्तोत्र कुण्डलिनी के ही चमत्कारपूर्ण विलासों का निदर्शन है। तंत्रशास्त्र की परिभाषा में इसको अन्तर्याग की संज्ञा दी गई है। यहाँ इसी अन्तर्याग के वर्णन के कारण इसका नाम अन्तर्विमर्श रखा गया है। इसके दो पद्य प्रस्तुत है—

मूले दीपाङ्कुराकारमग्रे पक्षानुकारिणीम् ।
किरन्तीममृतज्योत्स्नां कलये बोधसारिणीम् ।
श्यामामपि परिस्फूर्जत्तडित्कान्तकलेवराम् ।
वन्दे त्रिविग्रहां नानाविग्रहामप्यविग्रहाम् ॥[15]

(13) **आर्याम्बर्चना**—इसमें भगवती के निराकार रूप की प्रधानता बतलाते हुए सर्वसाधारण की दृष्टि से उनके साकार रूप की कल्पना तथा पञ्चायतन के रूप में उपासना प्रणाली की प्रमुखता का निर्देश किया है। साथ ही इस उपासना के द्वारा लौकिक सुखों के उपभोग तथा स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) तीनों की सुगम उपलब्धि का निरूपण है। शक्ति-पञ्चायतन के पूजा प्रकार में स्थूल और सूक्ष्म दोनों उपासना क्रमों का समन्वय और उनका एकत्र अन्तर्भाव होना भी बतलाया गया है। इसके दो पद्य प्रस्तुत है—

शोधय मानससरणिं बोधय विज्ञानकोरकाण्यभितः।
साधय सकलमनोरथपारक करूणानिधे! मातः॥
बन्धूक बन्धुराङ्गी विलसत्कारुण्यसुन्दररापाङ्गी।
भास्वद्भूषणभङ्गी मानस सङ्गीकृते भूयात् ॥[16]

(14) **अवस्थानिवेदन**—इसमें भक्त की कठिनाइयों और उसकी करुणदशा का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। एक ओर सामाजिक जीवन में होने वाले विपरीत और कटु अनुभव दूसरी ओर मानव सुलभ दुर्बलताओं का अनेक रूप से चित्रण करते हुए भक्त की विवशता एवं दयनीय दशा का हृदयस्पर्शी विश्लेषण उपस्थित किया गया है। प्रलोभनों में फंसकर मनुष्य किस प्रकार अपना विवेक खो बैठता है, स्वार्थ के वशीभूत होकर सत्य और असत्य की परवाह न करके किस प्रकार अपने कर्तव्यमार्ग से च्युत हो जाता है; परिणाम में उसे कैसी निराशाओं का सामना करना पड़ता है और अन्त में अपने किये पर कितना अनुताप होता है, आदि व्यवहार क्षेत्र के संबंध में मार्मिक उद्बोधन है। इसकी रचना संस्कृत के शिखरिणी छन्द में होने से करुण और वात्सल्य रस का संपुटित भक्ति परिपाक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इसमें वर्णित अनुभूतियाँ हृदय को द्रवित करने वाली हैं। अतः यह अवस्था निवेदन मानसिक वेदनाओं की प्रधानता के कारण स्वयंवेद्य है। इसके दो पद्य देखिये—

दिवा तत्तत्कार्यव्यतिकरपरीतेन मनसा,
निशायामप्यारान्मुहुरुपचितस्वप्रमहसा।
पराक्रान्तो दूये जननि! जगतामकेशरणे!
कथं वीक्षोपेक्षासरणिमनुसर्तुं प्रभवसि॥
न सक्तिस्त्वत्पूजाविधिषु न च भक्तिस्तवपदे,
क्व वा शक्तिर्ध्याने भवतु तरलानामविषये।
इति क्लेशाक्लिष्टे मयि यदि न ते मातरधुना
दयायोगो योगो भवति जनुषो निष्फल इह॥[17]

(15) **आत्मसमर्पण**—इसमें कवि ने जीवन में घटित होने वाले प्रमादों और मनुष्य सुलभ विवशताओं का लेखा-जोखा उपस्थित करते हुए भगवती की सहजसुलभ करुणा के प्रति हृदय का स्वाभाविक आकर्षण, उसकी छत्रछाया में सुरक्षा की स्थिरता, और उसके अकृत्रिम वात्सल्य का गुणानुवाद करते हुए, अपनी कमियों की ओर संकेत किया है और अनन्यगतिक होकर माता के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है। साथ ही यह अभिलाषा व्यक्त की है, कि उसका यह मोह बन्धन कभी टूटने न पावे। इसके दो पद्य प्रस्तुत है—

संसारदावानलदीनभक्तप्रसादनैकामृतपूरपूर्तिः।
उपासकप्रीणप्रबद्धकक्षे! दुर्गाप्रसादस्य गतिस्त्वमेका॥
क्लिश्यत्कवित्वव्रततीवितानप्रकाशनानभ्रनभस्य वृष्टिः॥
समुच्छलद्भक्तिविशेषतुष्टे! दुर्गाप्रसादस्य गतिस्त्वमेकाः॥[18]

द्वितीय-विश्राम

(1) **दुर्गाप्रसादाष्टकम्**—इसमें भावना-प्रधान उपासना का मार्गदर्शन करते हुए आगमोक्त कालीकुल और श्रीकुल के अन्तर्गत परिगणित होने वाली विभिन्न शक्तियों के आविर्भाव और उनकी शास्त्र-सम्मत मौलिक एकता का निर्देश है। इस प्रसंग से तन्त्र-शास्त्र में वर्णित मेधा-साम्राज्यदीक्षा आदि कुछ प्रमुख दीक्षाओं का संकेत-रूप में निदर्शन और मूलशक्ति के साथ उनका अभेद बतलाया गया है। पराशक्ति की प्रधानता और उसके द्वारा स्थूल और सूक्ष्म दोनों उपासनाओं का उद्गम और उनके पारमार्थिक रूप का भी परिचय है।[19] कतिपय पद्य देखिये—

वन्दे निर्बाधकरुणामरूणां शरणावनीम् ।
कामपूर्णजकाराद्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम् ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ प्रतिव्यक्तिविलक्षणाम् ।
सेवे सैरिभसंमर्दरक्षणेषु कृतक्षणाम् ॥

स्तवीमि परमेशानी महेश्वरकुटुम्बिनीम् ।
सुदक्षिणामन्नपूर्णां लम्बोदरपयस्विनीम् ॥20

(2) **नवदुर्गास्तव**—दुर्गा-सप्तशती के देवीकवच में निर्दिष्ट नवरात्र की पूजा में प्रधानता रखने वाली शैलपुत्री आदि नवदुर्गाओं की यह स्वतन्त्र स्तुति है। उनके सम्बन्ध में प्रचलित पौराणिक आख्यानों का सार और आगमोक्त विशेषताओं का समन्वय करते हुए वर्णन है तथा महाकाली आदि दुर्गापाठ में वर्णित त्रिशक्तियों का इनसे सम्बन्ध और अन्त में इन सबका दुर्गा के रूप में अन्तर्भाव होना बतलाया है। इस स्तोत्र के कुछ पद्य देखिये—

कार्येण याऽनेकविधां श्रयन्ती
निवारयन्ती स्मरतां विपत्तिः।
अपूर्वकारुण्यरसार्द्रचित्ताः
सा शैलपुत्री भवतु प्रसन्नाः॥
पादौ धरित्री कटिरन्तरिक्षं
यस्याः शिरो द्यौरुदितागमेषु।
अन्यद्यथायोगमयोगदूरा
सा चन्द्रघण्टा घटयत्वभीष्टम् ॥21

4. ललितासहस्रं काव्यम्

इस स्तोत्रकाव्य के रचयिता दुर्गाप्रसाद द्विवेदी से दीक्षित जयपुर वास्तव्य तन्त्रागमनिष्णात आशुकवि पं. हरिशास्त्री दाधीच है। यह स्तोत्र राजस्थानीय स्तोत्र वाङ्मय में महनीय स्थान रखता है। इस स्तोत्र में *ब्रह्माण्डपुराण* के ललितोपाख्यान में हयग्रीव-अगस्त्य संवाद में वर्णित भगवती ललिता के सहस्रनामों पर आधारित, एक-एक नाम पर मंत्रगर्भित अनुपम काव्यसौष्ठसम्पन्न एक-एक श्लोक है। इन श्लोकों में तन्त्रोक्त श्रीविद्या उसकी अधिष्ठत्री स्वरूपिणी श्रीचक्राधिवासिनी त्रिपुरसुन्दरी महाराज्ञी ललिता देवी के महिमामय कार्यों तथा स्वरूपों को प्रकाशित किया गया है। कामेश्वरी भगवती की तन्त्रागम के अनुसार बारह कलाओं की सुन्दर व्याख्या की गई है। कुछ पद्य द्रष्टव्य है—

यस्यां माति समस्तविश्वमथवा याऽऽस्ते परिच्छेदिनी
सर्वेषां जगतां, प्रमाणयति यां लोकोऽस्य निष्पत्तये।
योऽमायां निशि तां हि खण्डपरशोर्जायां जनोऽर्चत्यसौ
'माया' मुत्तरति क्षणेन सकलां नायाति भूयो भवम् ॥
आकाङ्क्षे न हि भूमिपाल भवन द्वाराण्यहं लोकितुं
कौबेरीं श्रियमश्नताश्च धनिनां नैवाननानीक्षितुम् ।

ईषज्ज्ञानमदाविलानपि जनाञ्जेतुं स्पृहा नास्ति मे
कामानां 'प्रसवित्रि' देवि हृदये वासस्तवाऽस्तां सदा॥[22]

1962 ई. में श्री गोविन्द मिश्र भरतपुर ने इस 'श्री ग्रन्थमाला' के तृतीयपुष्प के रूप में प्रकाशित किया है।

5. कलिकात्रिशती–

इस स्तोत्र का प्रणयन पं. हरिशास्त्री दाधीच ने किया है। भगवती कालिका के स्तव साहित्य में 'त्रिशती' का अभाव था अतएव श्रीभक्तों के आग्रह पर शास्त्री जी ने अत्यन्त प्रसन्नता एवं उत्साह से इस 'स्तोत्र' की रचना की। इस स्तोत्र के भगवती के अपूर्व, अनुपम, तीनसौ सुन्दर नामों का अर्चन है। सच्चिदानन्द स्वरूपिणी, भक्तवत्सला, करुणामृतसागरा, विश्वम्भरा, महामाया कालिका का चरित्र व कार्य अतिभयंकर तथा माधुर्यपूर्ण, सौम्य-रौद्र, संहार एवं सृजन की विचित्र विविधताओं से युक्त है। इनके स्वरूप एवं महिमा का गान करने वाला यह 'त्रिशती' स्तोत्र शतपद्यात्मक है तथा श्री रामदयालु औषधालय अजमेर से श्री पुरुषोत्तमलाल शर्मा द्वारा प्रकाशित है। इस ग्रन्थ का नाम श्री 'कालीपञ्चरत्नम् ' है। ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, अंगन्यास तथा मानसोपचार के उपरान्त पठित इन तीन सौ नामों में से कुछ पद्य प्रस्तुत—

ॐ क्रीं कालिका केवला कालकला कैवल्यरूपिणी।
आद्याः शक्ति पराविद्या महामाया स्वभूर्विभुः॥
स्वान्तस्थकोटिब्रह्मास्नण्डा हानोपादानबोधिका।
वेदोपनिषदुच्छवासा सर्वदेवोपसेविता॥
ब्रह्मविष्णुशिवेशाना पुराणस्मृतिशालिनी।
आगमोल्लासकारिणी मन्त्रतन्त्रप्रवर्तिनी॥
कार्मानुयोजिका कर्मफलदा कर्मसाक्षिणी।
कर्मक्षयकरी कर्मगुणयोगविभेदिनी॥[23]

6. श्रीकस्तूरीस्तवराज

इसके रचयिता पं. हरिशास्त्री दाधीच हैं तथा इस स्तोत्र में भी भगवती जगदम्बा के दिव्य स्वरूप का आराधन है। इसमें कुल 42 पद्य हैं तथा यह 'कालीपञ्चरत्नम्' में प्रकाशित है। तन्त्रागमोक्त रहस्यों का भी इसमें व्याख्यान किया गया है।

'कस्तूरी' शब्द के रहस्य को बताते हुये प्रारम्भिक श्लोक में ही कहा गया है कि कस्तूरी में द्वि, गुण, श्रुति, इषु अर्थात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम वर्णो से रहित अर्थात् कस्तूरी पद से अ स् त् ऊ इन चार वर्णो से विरहित क्+री श्लिष्ट होकर 'क्री' बनता है—जो आगमोक्त शीतांशु लेख से कालिका द्वारा 'क्री' बीज के

रूप में प्रतिष्ठित होता है। इस 'क्रीं' बीज की सबुद्धि तथा 'स्वाहा' परक युक्ति करके 'क्रीं स्वाहा' एक, 'क्रीं क्रीं स्वाहा' दो इस तरह छ बार बीजमंत्र के रहस्य योग विधि अनुष्ठान से कालिका का जाप करने पर समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं—

कस्तूरिद्विगुणश्रुतीषुरहिता शीतांशु लेखोज्ज्वला,
यस्या बीजमनुर्जयत्यविरतं लोकाञ्छिवं लम्भयन् ।
प्राणान्पोषणमापयञ्जनमनोमात्राः समुल्लासयन्
वन्देऽहं परमेश्वरीं भगवतीं तां दक्षिणां कालिकाम् ॥[24]

इसी प्रकार पञ्चाक्षरी, सप्तबीज, षडक्षरी, सप्ताक्षरी, अष्टाक्षरी, नवाक्षरी, आत्मबीज एवं द्वादशाक्षरी पर्यन्त बीजमन्त्रों एवं रहस्यों को उद्घाटित किया है। जाप का फल बताते हुये एक स्थान पर उद्धृत है—

मन्दो विज्ञति पङ्गुरिङ्गति जवात् रङ्को महीपालति,
शत्रुर्मित्रति हिंसकोऽनुचरति क्रूरोऽप्यलं सौम्यति।
क्षीणः पुष्टति निर्बलः प्रबलति त्रस्तोऽपि निर्भीकति,
कालि! त्वन्मनुजापकेन कृपया स्पृष्टोऽपि दृष्टोऽप्यहो॥[25]

7. देवीस्तोत्र

देवीस्तोत्र के प्रणेता जयपुर निवासी कविमल्ल हरिवल्लभभट्ट हैं। इस स्तोत्र में कवि ने अपनी कुलदेवी महाशक्ति स्वरूपिणी भगवती गौरी का 15 पद्यों में वन्दन किया है। इस स्तोत्र में प्रौढ़ पाण्डित्य एवं सुन्दर रचनाचातुरी का निदर्शन है। राजस्थान संस्कृत-अकादमी ने श्री हरिवल्लभ भट्ट की समस्त रचनाओं को प्रो. प्रभाकरशास्त्री के सम्पादकत्व में 'कविमल्लकाव्य कौमुदी' के नाम से प्रकाशित किया है। यह स्तोत्र भी उसमें संकलित है। कुछ पद्य प्रस्तुत है—

सततविनतिततिविनिरतशतधृति शितिगल शौरि।
भगवति तव पदपङ्कजे भवतु मुदे मम गौरि॥
शिथिलीकृतसमरावसरहरिणाधिपमुखदौरि।
महिषविपुलगलविदलिनी जय जय भगवति गौरि॥
वलयितनिखिलसखीसविधवादितमृदुकरतालि।
मधुरमधुरपदगायनी जय जय भगवति कालि॥[26]

8. श्रीमन्दाक्रान्ता स्तोत्र

इस स्तोत्र के लेखक सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीमदमृतवाग्भवाचार्य हैं। यह स्तोत्र अखण्ड ब्रह्माण्डमण्डल अधिष्ठात्री कुलकुण्डलिनीस्वरूपा, मूलविद्यास्वरूपिणी, महामहिमामयी जगदम्बा, राजराजेश्वरी भगवती

श्रीत्रिपुरसुन्दरी के भक्तिभाव से भरे एवं दिव्य रहस्यों से युक्त हैं। इसमें 74 पद्य हैं तथा यह श्रीमदमृतग्रन्थमाला भरतपुर से प्रकाशित है। इस स्तोत्र का अन्य नाम 'भगवतीस्तव' भी है।

स्तोत्र के प्रारम्भ में जन्म जन्मान्तरों के आवागमन से व्याकुल मानव को भोग और मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति हो इस आशय की प्रार्थना की गई है—

भ्रामं भ्रामं विविधजननीगर्भगेहान्तरेषु,
श्रान्तश्श्रान्तस्तवपदयुगं प्राप्य विश्रान्तिहेतोः।
शान्तस्स्वान्तश्चरणपतितः प्रार्थये त्वां नितान्तं,
मातर्माऽतः! परमनुभवं जन्मनो देहि मह्यम् ॥[27]

भगवती का ध्यान वर्णन करते हुये लिखा है—

स्फूर्जद्राकाहिमकरमुखी कुन्ददन्ताभिरामा,
लाक्षा पङ्कारुणिमचरणा पक्वबिम्बाधरा माम् ।
बालं बाला स्फटिकगुलिकामालिका पुस्तिकाढ्या,
त्रासत्राणाऽभिलसितकरा सन्ततं पात्वपायात् ॥[28]

भक्त ने बालसुलभ वृत्ति से माता को अनेक उपालम्भ दिये है। अतिशय भक्तिपूर्ण, श्रद्धासमन्वित प्रार्थनाएँ इस स्तोत्र में विहित हैं। बालाम्बा का मन्त्रस्वरूप, सिद्धसाधना, सारस्वतबीज, वाग्वादिनीबीज, मध्यमबीज, कामराजबीज, कुण्डलिनीचक्र, सकलकला अधिष्ठान, वाङ्मय अधिष्ठानों की अधिष्ठात्री के स्वरूपों, फलों, सर्वांग पूजन आदि के द्वारा स्तवन किया गया है। सांसारिक समुद्र में डूबे हुये लोगों को तारने वाली भगवती ही है—

संसाराब्धौ कलुषमसृणे मज्जतां त्वं नराणां
पोतः कोऽपि स्फुरसि इति यच्छयते भक्तवर्गे।
तच्चेत् सत्यं जननि! गणनातीत कारुण्यमूर्ते!
निर्वेदं मे हर हरमुखादुद्गते! त्वत्सुतस्य॥[29]

9. श्रीमहानुभवशक्तिस्तव

इसके लेखक श्रीमदाचार्यअमृतवाग्भव हैं। यह श्रीस्वाध्यायसदन से प्रकाशित है। इस स्तोत्र में सच्चिदानन्दकन्द परिपूर्णप्रकाशरूप परमेश्वर-शिव की विमर्शरूपा शक्ति की वैश्विक महिमा को प्रकट किया गया है। शिवतत्त्व से लेकर पृथ्वीतत्त्व तक समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाली भगवती अनेक दशाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है, जिनका साक्षात्कार योगियों को समाधि द्वारा होता है। भगवती के पाँच

प्रमुख रूप है- चित्शक्ति, निर्वृत्तिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति । इन्हीं पाँच शक्तियों का विशेष स्तवन इस स्तोत्र में किया गया है। जिस प्रकार बीज से वृक्ष का निर्गम होता है उसी प्रकार परमेश्वर से विश्व का निर्गम होता है, यह निर्गम ही विसर्ग है। यह विसर्ग करने वाली परमेश्वर की नैसर्गिकी शक्ति या स्वभावभूता परमेश्वरता चित् शक्ति है। श्रीचक्र के मध्य शिवशक्तिमय परमशिव स्वरूप बिन्दु की शिवता का बीज यही चित् शक्ति है—

प्राक् सर्गतोऽपि परतोऽपि मध्यदेशे
सांसर्गिकेऽत्र सकले परिपूर्णरूपा।
नैसर्गिकी परशिवाकृति बिन्दुबीजं
वैसर्गिकी जयति शक्तिरनन्तवीर्या॥[30]

अहं प्रकाश से संसार के समस्त भावों को भरने वाली आनन्दरूपिणी निर्वृति आदि अन्य शक्तियों का भी सारगर्भित रहस्याख्यायी स्तवन किया गया है।

10. देवीस्तोत्र

इस स्तोत्र के प्रणेता आचार्य अमृतवाग्भव है। यह सहज सरल सुबोध भक्तिभावों से संपूरित आत्मदीनता और अनन्यशरणागति कृपायाचना से युक्त स्तोत्र है। यह स्तोत्र श्रीमदमृतवाग्भावाचार्य-सांस्कृतिकशिक्षा एवं शोधसंस्थान जयपुर द्वारा प्रकाशित *''आचार्य अमृतवाग्भव दर्शन''* नामक ग्रन्थ में संगृहीत है। हे माँ! मैं आपका पुत्र हूँ अतः मुझ पर कृपापूर्ण दृष्टिपात कीजियें, क्या मेरी दुर्दशा नहीं देख रही है, प्रतीक्षा न कीजिये शीघ्र कृपा कीजिये, मुझ रोते हुये की बात सुनो, बताओ किसके समक्ष रोऊँ? आपके अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं है। आपके चरणकमलों में शत शत प्रणाम करके याचना करता हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। भावों से भरे कुछ पद्य देखिये—

हर मे हर वामलोचने
सकलां त्वं मलपङ्कसंहतिम् ।
भवभूरिभयापहारिणी
भवसिन्धौ भवभीतिचेतसाम् ॥
मम मातरिदं शृणुष्व मे
वचनं नेत्रजलेन मिश्रितम् ।
वद रोदिमि कस्य संमुखं
त्वदृतेऽन्यस्थलमेव नास्ति मे॥
तव संप्रति पादपङ्कजे
शतशोऽयं प्रणिपत्य याचते।

तनयस्त्वं सर्वथास्म्यहं
दयया मां परिपालयाम्बिके॥[31]

11. श्रीमातृलहरी

मातृलहरी के रचयिता रामपुरा, जयपुरनिवासी श्री नाथूलाल शर्मा 'मधुकर शास्त्री' हैं। यह स्तोत्र श्रीबाला माता त्रिपुरसुन्दरी की आराधना में लिखा गया है। श्री शास्त्री जी बांसवाड़ा के निकट स्थान में विराजित अष्टादशभुजधारिणी पराम्बा के अनन्य उपासक हैं। इस स्तोत्र में 50 पद्य हैं तथा यह रचना प्रकाशित है।[32] यह स्तोत्र प्रो. प्रभाकर शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित *''राजस्थान लहरीलीलायितम्''* नामक ग्रन्थ में भी संकलित है। कतिपय पद्य प्रस्तुत है—

त्रैलोक्यस्फुटमन्त्रतन्त्रमहिमां नाप्नोति शश्वद् विना,
यद्बीजं व्यवहारजालमखिलं नास्त्येव मातस्तवत्तः।
तज्ज्ञाप्यस्मरणप्रसक्तसुमतिः सर्वज्ञतां प्राप्य कः
शब्दब्रह्मनिवासभूतवदनो नेन्द्रादिभिः स्पर्धते॥
बिन्दुप्राणविसर्गजीवसहितं बिन्दुत्रिबीजात्मकं,
षट्कूटानि विपर्ययेण निगदेत्तारत्रिबालावलैः।
एभिः सम्पुटितं प्रज्प्य विहरेत् प्रासादमन्त्रं परं
गुह्याद् गुह्यतमं सयोगजनितं सद्भोगमोक्षप्रदम् ॥[33]

12. श्रीमहिम्नस्तोत्र

इस स्तोत्र के प्रणेता अलवर निवासी पं. प्रभुदत्त शास्त्री है। जगज्जननी की आराधना में रचित इस स्तोत्र में 41 पद्य हैं। लेखक द्वारा स्वरचित टीका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित है।

13. श्री चण्डिका स्तुति

इस स्तोत्र के प्रणेता डूंडलोद सीकर के निवासी पं. महावीर प्रसाद जोशी हैं। यह स्तव उनके स्तुतिसंग्रह *'प्रार्थना पुष्पाञ्जलि'* में संगृहीत हैं जिसका प्रकाशन कलानिकेतन शार्दुलपुर ने किया है। कतिपय पद्य प्रस्तुत है जो अनुपम नाद सौन्दर्य से मनोहारी बन गये हैं—

अमन्दनन्दनारविन्दकुन्दमालनन्दिता।
मुकुन्दचन्द्रमौलिमद्गजेन्द्रवृन्दवन्दिता॥
अनिन्द्यसुन्दरीश्रिया सुमन्द्रमन्दहासिनी।
परं दरं दुनोतु मे पुरन्दरारिनाशिनी॥

अशान्तकान्तकुन्तला दुरन्तकुन्तधारिणी।
दिगन्तदन्तिदन्तकृन्तनोग्रसिंहचारिणी॥[34]

14. भगवती स्तव

इस स्तोत्र के रचयिता कांकरोली उदयपुर निवासी पं. लक्ष्मीनारायण पुरोहित है। इस स्तोत्र जगदम्बा के महिमामय उज्ज्वल चरित्र का गान किया गया है। यह स्तोत्र कालिदासस्मृतिसमारोह कविसम्मेलन में 'कालिदासः–भागधेयम्' इन दो समस्यापूर्तियों के रूप में श्री पुरोहित द्वारा सुनाया गया। यह राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'राजस्थान के कवि' में संकलित तथा प्रकाशित है। कतिपय पद्य प्रस्तुत है—

लोकस्य भीतिहरणं शरणं सुराणां
मातस्त्वदीयचरणं प्रणतोऽनुरागैः।
लोकोत्तरामचिरमुन्नतिमाप्नुवानो
लोकाश्रयो भवति बत कालि! दासः॥
मातस्तवैष वरदः करकल्पशाखी
छायाकरोति करुणाचलितः कदाचित् ।
यन्मूर्ध्न्यसावखिलतापविनिर्गतः सन्
कामन् समान् समयते तव कालिदासः॥
मन्दावलोकमधुरा वसुधा सुधाऽसौ
नेत्रेषु याऽम्ब! रुचिरा रुचिरा विभाति।
स्नेहाम्बुधेः स लसतोऽन्तरुदेति भङ्गोऽ
नेनेष्यते स्नपयितुं तव कालि! दासः॥[35]

15. श्री कात्यायनी स्तुति

इस स्तुति के रचयिता डूंगरपुर निवासी पं. गणेशराम शर्मा है। *भारती पत्रिका* में प्रकाशित इस स्तव में जगदम्बा दुर्गा की अवतारस्वरूपा देवी कात्यायनी की वन्दना है। 25 पद्यात्मक इस स्तोत्र में भक्तिभाव और कवित्व का रुचिकर सामञ्जस्य है। सम्पूर्ण स्तोत्र प्रहर्षिणी छन्द में निबद्ध है। सर्ववन्द्या देवी की स्तुति के दो पद्य देखिये—

या देवी सुरनरसिद्धसन्मुनीन्द्रै–
र्गन्धर्वैर्गुहगणकिन्नराप्सरोभिः।
देवर्षिद्विजपतिभूमिपालसङ्घै–

वन्द्या तामिह जगदम्बिकां प्रपद्ये॥
चिद्रूपागमनिगमेषु कीर्तितापि
अव्यक्तापि त्रिगुणयुतापि विश्वयोनिः।
अव्यक्तां तदपि जगु विरञ्चिमुख्यां–
स्तां दुर्गादुरधिगमां शिवां प्रपद्ये॥[36]

16. श्री देवीमहिमाष्टकम्

इसके प्रणेता निम्बार्क पीठाधीश्वर जगदगुरु श्री राधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य हैं। यह रचना *'स्तवरत्नाञ्जलि'* में संकलित प्रकाशित है। परात्परब्रह्म की परा आद्यशक्ति, अचिन्त्य रूपा, रमणीयशोभायुक्त, सिद्धेश्वरी, सिद्धिमती, देवताओं की स्वामिनी, वरेण्य (श्रेष्ठ) श्री वैष्णवी देवी को नमस्कार है जो दुराचारी दुर्दम दैत्यों का संहार करने वाली, भव भयहारिणी है। जो श्रीकृष्ण की शक्ति, दिव्यकान्तिवाली, कात्यायनी, हैमवती, भवानी, भक्तिप्रदायिनी, शरणागतपीडाहारिणी सर्वश्रेष्ठा है ऐसी सर्ववन्द्या वैष्णवी को बारम्बार प्रणाम अर्पित करने वाले इस सुमधुर स्तोत्र के कतिपय पद्य प्रस्तुत है—

परात्परब्रह्मपराद्यशक्ति–
मचिन्त्यरूपां रमणीयशोभाम् ।
सिद्धेश्वरीं सिद्धिमतीं सुरेशां
श्रीवैष्णवीं नौमि वरेण्यदेवीम् ॥
संहारशक्तिरसपूर्णभक्ति–
मानन्दशक्तिं रसलिप्सुतृप्तिम् ।
रसानुरक्तिं वरणीयवृत्तिं
श्रीवैष्णवीं नौमि वरेण्यदेवीम् ॥[37]

17. ललितालहरी

इसके लेखक जोधपुर निवासी पं. श्री राम दवे है। 62 शिखरिणी पद्य–निबद्ध यह रचना आदरणीय दवे जी ने प्रकाशित कर वितरित की है। कवि ने अपने जीवन के प्रत्येक कठिन अवसर पर प्राप्त सफलता का कारण भगवती ललिता की अनुकम्पा को माना तथा अपने व्यवस्थित जीवन के सांयकाल में माता के गुणगान स्वरूपिणी *'ललिता लहरी'* की रचना की। जोधपुर के निकट समदड़ी नामक स्थान पर शैलवासिनी माँ ललिता का विग्रह है जो श्री दवे की कुलदेवी तथा आराध्या है। इसक स्तोत्र में अनन्य भक्ति और पाण्डित्य का मनोरम सम्मिलन है। दो पद्य प्रस्तुत है—

तव द्वारोपेतो व्रजति न निराशः क्वचिदपि
धनी वा दीनो वा ध्रुवमभिमतं विन्दति जनः।
अभीष्टानां दात्रीं सकलजनधात्रीञ्च ललिते
विहायान्यां कां वा शरणमभिगच्छामि जननीम् ॥
शरीरे वैक्लव्यं विषमरुजया माऽस्तु ललिते!
सपर्यावैधुर्यं भवति खलु येनाम्ब! सहसा।
कृपापाङ्गा दृष्टिर्मयि लसतु नित्यं भगवति!
न मे भक्तिस्थैर्यं विचलतु च मातः क्वचिदपि॥[38]

18. श्रीस्तवस्तबकम् (अष्टकाष्टकम्)

इसके प्रणेता भरतपुरवास्तव्य कविपुण्डरीक पं. सम्पूर्णदत्त मिश्र है। यह श्रीमिश्र के उन स्तोत्रों का संग्रह जिनमें भगवती का स्तवन विहित है। अष्टकाष्टकम् में 8 स्तुतियाँ है—1. कालीधिक्काराष्टकम्, 2. गुणवतीस्तव, 3. सौभाग्यभावन्परास्तव, 4. दुःस्वप्नार्तिहरास्तव, 5. धवलाचलदुर्गास्तव, 6. धवलपर्वतसुन्दरीस्तव, 7. कामाक्षावरदस्तव, 8. सुन्दरीसंगमस्तव है।

यह संकलन सम्प्रति पूर्णतः अनुपलध है तथा अप्रकाशित भी। 'कामाक्षावरदस्तोत्र' शोधप्रबन्धकर्ता को उपलब्ध हो सका है। यह स्तोत्र कवि के अनुसार आशुविवाहकारक है जिसके पाठ से कई अविवाहित वर कन्याओं के विवाह हो गये हैं—

वरविवाहकामाय स्त्रीपुँल्लोकाय निर्मितम् ।
सर्वकामहितं नित्यं कामाक्षावरदाष्टकम् ॥

यह सदाशिव की शक्तिस्वरूपणी कामाक्षा देवी के आराधन में रचित है। इसके दो पद्य प्रस्तुत है—

कामाक्षिके वरदगेहिनि योगदक्षे
दुर्भाग्यलेखलघुलुम्पनलम्पटा त्वम् ।
धर्मार्थकामजसुखाय समुत्सुकोऽहं
सौभाग्यभावनपरे शरणं त्वमेव॥
विवाहोत्को लोकः सपदि वरपत्नी सुखमलं
पतीयन्ती नारी पतिसुखमवाप्रोति तरसा।
ततो दुर्भाग्याङ्कप्रकटपरिणामापि जगती
सकामा कामाक्षे वरदरमणि त्वां प्रणमति॥[39]

19. स्रग्धरा स्तव

इसके लेखक राजगढ़ अलवरवास्तव्य पं. विष्णुदत्त शास्त्री है। पं. शास्त्री ने अपने गुरु तन्त्रागमनिष्णात आचार्य हैडियाखण्ड बाबा के स्मरण में 700 पद्यों के विशाल स्तुतिसंग्रह का प्रणयन किया है। श्री शास्त्री के गुरु नैनीताल के समीप हैडियाखण्ड नामक शक्ति पीठ पर सिद्ध हुये अतः वे इसी अभिधान से प्रसिद्ध हो गये, कालान्तर में उन्होंने राजस्थान में निवास किया। पं. विष्णुदत्त शास्त्री तन्त्रसाधना में दीक्षित हुये तथा भगवती कृपा से प्रभावशाली कवित्वपूर्ण रचनाओं का स्फुरण होने लगा। स्रग्धरास्तव इसी संग्रह में संकलित तथा प्रकाशित है। इसमें 10 पद्य है। पराम्बा त्रिपुर सुन्दरी की महिमा बताने वाला एक पद्य प्रस्तुत है—

हैडाखण्डेश्वरी त्वं सकलसुरनुते देवि विश्वार्तिहन्त्री
दीनार्तानां सदा त्वं भवभयहरणे! प्रोद्यता मातृशक्तिः।
त्वं गौरी सर्वदेहे पदकरनिकरे शोणरूपा विभासि
भासा श्रीदन्तपङ्क्तेर्नखदृग्सुषमा भास्वरा भासि गौरिः॥[40]

20. उपजाति स्तव

उपजातिछन्दोबद्ध अष्टश्लोकात्मक इस रचना के रचयिता अलवर वास्तव्य पं. विष्णुदत्त शास्त्री है। श्री बालात्रिपुरसुन्दरी जगदम्बा का यह स्तवन भी हैडयाखण्डी *सप्तशती* में संगृहीत, प्रकाशित है। दो पद्य प्रस्तुत हैं—

भवार्णवे भीतितरङ्गपूर्णे मोहान्धतामिस्रसमाकुलोऽहम् ।
मां रक्ष अम्बे! जगदावलम्बे, प्रसीद विश्वेश्वरी पाहि दुर्गे॥
आनन्दरूपां चितिशक्तिदीप्तां, विद्या परां ब्रह्मरसनानुभूतिम् ।
कारुण्यपूर्णां गुरुमूर्तिरूपां, देवीं नमामः जगदीश्वरीं त्वाम् ॥[41]

21. अनुष्टुपस्तव

अनुष्टुपछन्द में निबद्ध इस रचना के प्रणेता भी अलवरवास्तव्य पं. विष्णुदत्त शास्त्री है। इस स्तवन में 114 पद्य हैं जिनमें ब्रह्माणी, सर्वपापविमोचिनी, परात्परा, श्री विद्याधिष्ठात्री पराम्बा का स्तवन है। कुछ पद्य प्रस्तुत है—

तापत्रयहरी नास्ति, त्वत्समा भुवनत्रये।
देवि त्र्यम्बकपत्नी त्वं मातस्त्रैलोक्यवन्दिते॥
नमस्त्रैलोक्यसंत्राणतत्परे परमेश्वरि।
सर्वज्ञे सर्वनिलये सर्वसाधनसिद्धदे॥

नमस्ते योगिनी सिद्धवत्सले पालपोषिणी।
नमो विश्वार्तिहारिणी विश्ववन्द्ये नमो नमः॥[42]

22. शार्दूलस्तव

इसके लेखक पं. विष्णुदत्त शास्त्री है। शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध 44 पद्यात्मक यह रचना भी हैडयाखण्डी *समशती* में प्रकाशित है। इसके दो पद्य प्रस्तुत है–

चन्द्रे चन्द्रप्रभात्वमेव जननी सूर्यप्रभा निर्मला,
नक्षत्रेषु चमत्कृतिः सुविमला त्वद्रूपिणी लक्ष्यते।
वह्नौ दाहकता जले सरसता भूमौ जगद्धारिणी,
शक्ति ते प्रतिमा विभाति वरदे! विष्णौ जगत्पालिनी॥
लक्ष्मी त्वं सदया कृपामृतवहा दानीश्वरी दैन्यहा
यातायाचकतां सुरास्तवपुरः संयाच्य भिक्षां सकृत् ।
त्वं नित्यं द्रवसे दयापरवशा दीने दयाकारिणी,
मातर्देवि दयामयि कुरु कृपावृष्टिसुधास्यन्दिनीम् ॥[43]

23. नवदुर्गास्तवनम्

इसके रचयिता जयपुरवास्तव्य पं. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय है। दुर्गा आदिशक्ति है जिसके अनुग्रह से इस अनुपम सृष्टि की रचना हुई है। भक्तजनमानस कुञ्जविहारिणी, कलिमलहारिणी, त्रिविधतापनिवारिणी एक ही शक्ति के नवस्वरूपों का नवरात्रों में सभी साधकों द्वारा पूजन समर्चन किया जाता है। नवदुर्गाओं की अनुकम्पा से ही साधकगण सिद्धकाम होकर संसार सागर को पार कर जाते हैं। इस स्तोत्र में इन्हीं नवदुर्गाओं— शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुमाण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धिदात्री की कृपा की अभिलाषा वर्णित है साथ ही भगवती के दिव्य स्वरूपों तथा अलौकिक महिमामय कार्यों का समुल्लेख–स्तवन वन्दन है। सिद्धिदात्रिमाता के मनोहारी स्वरूप का गान करता एक पद्य प्रस्तुत है—

गन्धर्वैः सिद्धसङ्घैरदितिदितिसुतैर्मानवैः सेव्यमाना,
अष्टै सिद्धीः प्रदत्ते धृतकमलगदाशङ्खचक्राभिरामा।
यस्या एव प्रसादान्मदनमदहरोऽप्यर्धनारीश्वरोऽभूत्
पायात् सा सिद्धिदात्री जननभयहरा विश्वकल्याणकर्त्री॥

इसी भांति गोद में कुमार को लिये देवसेनाओं का नेतृत्व करती हुई, हाथ में कमलधारण करने वाली, भक्तों को अपना परमपद प्रदान करने वाली, करोड़ों सूर्यों की प्रकाशवाली कामदेव के नाशक श्री शिव की प्रिया मृगेन्द्रासना स्कन्दमाता से रक्षा की प्रार्थना में रचित पद्य प्रस्तुत है—

यस्या अङ्के कुमारो विलसति नितरां देवसेनाग्रगायी
हस्ताब्जैः पद्मयुग्मं वरमथ तनयं या हि धत्ते सिताडी।
भक्तेभ्यो या प्रदो निज परमपदं कोटिसूर्यप्रकाशा
पायान्नः स्कन्दमाता स्मरहररमणी सा मृगेन्द्राधिरूढा॥[44]

24. शक्तिमङ्गलम्

इसके प्रणेता जयपुरवास्तव्य पं. श्री प्यारेमोहन शर्मा है। यह स्तुति आपने 'भारती' के सम्पादन में मंगलपद्यों के रूप में विरचित की। इस स्तोत्र में भक्तिभावप्रवण कवि नवकोटिशक्तियुता जगदम्बिका से रक्षा की अभ्यर्थना करता है। शक्ति के मंगल स्वरूप का गान करने वाले दो पद्य प्रस्तुत है—

विद्या : सन्ति पुराणशास्त्रगदिता यस्या विभेदा शुभाः
सर्वा या वनिता नरा क्षितितले तस्याः स्वरूपाश्च ताः।
सर्वा चापि चराचरं जगदिदं यत्तेजसाभासते
अम्बा सा नवकोटिशक्तिसहिता मां पातु विन्ध्येश्वरी॥
चन्द्रार्काग्निविलोचना शशिधरा भक्तैर्सदा वन्दिता,
कान्त्या विश्वमोहिनी स्मितमुखी भूदेवरक्षापरा।
म्लेच्छेभ्यो भुवि भारतं प्रतिपलं संरक्षितुं तत्परा,
प्रीता सा जगदम्बिका स्वतनयान् पायादपयादहो॥[45]

25. श्रीललितामङ्गलसङ्गीतम्

इस स्तोत्र के प्रणेता भरतपुरनिवासी कविपुण्डरीक पं. सम्पूर्णदत्त मिश्र है। यह प्रकीर्ण स्तुति रचना है जो किसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। शोधहेतु श्री मिश्रजी द्वारा इसकी छाया प्रति उपलध कराई गई। गणपति, बटुकभैरवादि संवलित श्री त्रिपुरसुन्दरी जगदम्बा ललिता के चरणारविन्दों का वन्दन करने वाले इस स्तव का एक पद्य प्रस्तुत है—

इन्द्राणीन्द्रमुकुटमणिदीपितकल्पलताकुसुमाञ्जलिशलिते।
रतिपतिहासविलासविकासितकवितागीतकलाञ्जलफलिते॥
गणपतिबटुकभैरवीवलिते वन्दे पदकमले ते ललिते॥

26. ललितात्रिशती काव्यम्

इस स्तोत्र के रचयिता लक्ष्मणगढ सीकर निवासी पं. मुरारिलाल गोस्वामी हैं। इस रचना में 300 पद्य हैं जिनमें पराम्बा भगवती के तीन सौ नामों की आगमशास्त्रीय व्याख्या की गई है। आगम साहित्य में आद्या शक्ति ललिता के सहस्रों नाम वर्णित हैं फिर भी इस स्तोत्र में व्याख्यायित ककाररूपा आदि तीन सौ विरुद

शाक्त साधना के क्षेत्र में विशेष महत्व रखते हैं। ये नाम रहस्यमय हैं तथा सर्वप्रथम स्वयं सदाशिव के आदेश से ही भगवान् हयग्रीव ने महामुनि अगस्त्य को अधिकारी जान कर स्तवरूपात्मक ये नाम बताये थे। कवि ने प्रत्येक नाम पर एक-एक पद्य की रचना कर एक सुन्दर शक्तिस्तोत्रकाव्य का प्रणयन किया है। एक पद्य प्रस्तुत है—

शिरः कराक्षावयवाकला वा
विद्या चतुषष्टिकलाधरां वा।
ध्यानाय चन्द्रस्य कलां दधाना
कलावतीं त्वां मनसा स्मरामि॥

27. शिवा शतक

इसके लेखक लक्ष्मणगढ़ सीकर वास्तव्य पं. विश्वनाथ जोशी हैं। सौ पद्यों में रचित इस काव्य में जगज्जननी आद्याशक्ति पराम्बा शिवा की महिमा का गुणानुवाद किया गया है। सगुण ब्रह्म माया से सृष्टि की रचना करता है। ब्रह्म की यह माया शक्ति ही दुर्गा, भवानी, चण्डी, शिवा आदि नामों से शक्ति उपासना के क्षेत्र में विख्यात है । जिस प्रकार सृष्टि के उत्पत्ति, रक्षण तथा लयार्थ परब्रह्म के ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन प्रधान रूप हैं उसी प्रकार अनेक रूप युक्ता शक्ति के भी तीन प्रधान रूप हैं—

त्वमेव ब्रह्माणी परमशुभगा हंसरथगा
त्वमेव श्रीरूपा कृतगरुडयाना शशिमुखी।
वृषारूढा गौरी त्वमसि शिववामाङ्कनिलया
स्मरामि त्वां नित्यं सकलजगतामेकजननीम् ॥[46]

इनके अतिरिक्त भी अनेक सुललित स्तुति मुक्तकों वाले अनेक स्तोत्र लिखे गये हैं जिनमें भगवती राजराजेश्वरी श्रीचक्राधिष्ठात्री महासौन्दर्यसारश्रिया जगदम्बिका त्रिपुरसुन्दरी का भावमय स्तवन-वंदन-अभिनंदन किया गया है।

संदर्भ

1. *संस्कृत रत्नाकर,* वर्षे 4 अंक 11
2. *संस्कृत रत्नाकर,* 8 अंक 5 दिसम्बर 1941 पृ. 149
3. *दुर्गापुष्पाञ्जलि,* राज पुरातत्वान्वेषण मंदिर जयपुर (सम्प्रति राज. प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान) सन् 1957
4. *दुर्गापुष्पाञ्जलि,* पृ. 3, 5 पद्य 2, 3, 5
5. *दुर्गा पुष्पाञ्जलि जगदम्बा जयवाद,* पृ. 6,9,12 पद्य 1,4,8
6. *इहाष्टक, दुर्गा पुष्पाञ्जलि*-पद्य 2,8

7. *देवकालीमहिमा, दुर्गा पुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 7
8. *चण्डिकास्तुति, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 4
9. *महिषमर्दिनी गीति, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 4
10. *सकलजननीस्तव, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1
11. *सौख्याष्टक, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 7, 8
12. *अम्बा वन्दना* –पद्य 3
13. *आदेशाश्वघाटी, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 6
14. *स्वार्थाशंसनम्, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 5
15. *अन्तर्विमर्श, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 5
16. *आर्याम्बर्चना, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 8
17. *अवस्थानिवेदन दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 2, 7
18. *आत्मसमर्पण, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 4, 6
19. *दुर्गापुष्पाञ्जलिभूमिका*, गंगाधर द्विवेदी
20. *दुर्गाप्रसादाष्टक, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 3, 5
21. *नवदुर्गास्तव, दुर्गापुष्पाञ्जलि*–पद्य 1, 2
22. *राजस्थान के कवि,* पृ. 26 से उद्धृत
23. *कालिकात्रिशती,* पद्य– 1, 7, 8, 16
24. *कस्तूरीस्तवराज,* पद्य 1, 29
25. *कस्तूरीस्तवराज,* पद्य 1, 29
26. *कविमल्लकाव्यकौमुदी– देवीस्तोत्र*,पद्य– 2, 4, 11
27. *मन्दाक्रान्ता स्तोत्र*, पद्य 1
28. *मन्दाक्रान्ता स्तोत्र*, पद्य 5
29. *मन्दाक्रान्ता स्तोत्र*, पद्य 7
30 *महानुभवशक्तिस्तव,* पद्य–2
31. *देवीस्तोत्र,* पद्य 5, 7, 8
32. *राजस्थान लहरीलीलायितम्*, पृ. 233
33. *श्री मातृलहरी* पद्य 3, 4
34. *श्री चण्डिका स्तुति, प्रार्थनापुष्पाञ्जलि* पृ. 14
35. *राजस्थान के कवि*, पृ. 72 पद्य 4, 5, 10
36. *राजस्थान के कवि,* पृ. 19

37. *स्तवरत्नांजलि,* पृ. 100
38. *ललित लहरी*, पृ. 56, 58
39. *कामाक्षावरदस्तव* की छायाप्रति श्री सम्पूर्णदत्त मिश्र द्वारा शोधलेखक को प्रदान की गई।
40. *हैडाखण्डी सप्तशती,* पद्य-14
41. *उपजातिस्तव,* पद्य 1, 7
42. *अनुष्टुपस्तव,* पद्य 13, 27, 90
43. *शार्दूलस्तव,* पद्य 19, 40
44. *स्वरमंगला,* अक्टू0-दिस0 99 (24/4) पृ. 1
45. *भारती* अक्टूबर 98 पृ. 1
46. *शिवाशतक*, साहित्य परिषद्, लक्ष्मणगढ़ सीकर

संस्कृत विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)
चलवाणी-09414292699

श्री हरिहरानन्द सरस्वती करपात्र स्वामी द्वारा निरूपित त्रिपुरसुन्दरी शक्ति का स्वरूप

डॉ. गीतांजली शुक्ला

श्री हरिहरानन्द सरस्वती करपात्र स्वामी जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ *भक्तिसुधा* में त्रिपुरसुन्दरी भगवती के स्वरूप का विश्लेषण इस प्रकार किया है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्च की अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्द स्वरूपा भगवती ही सम्पूर्ण विश्व को सत्ता, स्फूर्ति एवं सरसता प्रदान करती हैं। विश्वप्रपञ्च उन्हीं से उत्पन्न होता है, और अन्त में उन्हीं में लीन हो जाता है। जैसे दर्पण में आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि प्रपञ्च प्रतीत होता है, दर्पण को स्पर्श कर देखा जाए तो यहाँ वास्तव में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वैसे ही सच्चिदानन्द रूप महाचिति भगवती में सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पण के बिना प्रतिबिम्ब का भान नहीं होता है, दर्पण के उपालम्भ में प्रतिबिम्ब का उपालम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड नित्य, निर्विकार महाचिति में ही उसके अस्तित्व में ही प्रमाता, प्रमेय, प्रमाणादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होने पर भाष्य के उपालम्भ की आशा नहीं की जा सकती।

सामान्य रूप से तो यह बात सर्वमान्य है कि प्रमाणाधीन ही किसी भी प्रमेय की स्थिति होती है। अतः सम्पूर्ण प्रमेय में प्रमाण कवलित ही उपलब्ध होता है। प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण ये अन्योन्य परस्पर की अपेक्षा रखते हैं। प्रमाण का विषय होने से ही कोई वस्तु प्रमेय हो सकती है। प्रमेय को विषय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही प्रमाण कहला सकती है। प्रमेय विषयक प्रमाण का आश्रय अन्तःकरणावछिन्न चैतन्य ही प्रमाता कहलाता है। फिर भी इन सब की उत्पत्ति, स्थिति और गति का भासक नित्यबोध आत्मा ही है। और वही 'साक्षी' और 'ब्रह्म' भी कहलाता है। यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसकों में से कुछ नहीं है, तथापि वह चिति भगवती आदि स्त्री वाचक शब्दों से और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक शब्दों से भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक- इन सबसे पृथक् होने पर भी उस-उस शरीर के सम्बन्ध से या वस्तु के सम्बन्ध से वही अचिन्त्य अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा महाचिति भगवती आत्मा, पुरूष, ब्रह्म आदि शब्दों से व्यवहृत होती है। मायाशक्ति का आश्रयण करके वे ही त्रिपुरसुन्दरी भुवनेश्वरी, विष्णु, शिव, कृष्ण, राम, गणपति, सूर्य आदि रूपों में व्यक्त होती है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण रूप त्रिपुर (तीन देह) के भीतर रहने वाली सर्वसाक्षिणी चिति ही त्रिपुरसुन्दरी कहलाती है। उसी माया विशिष्ट तत्त्व के जैसे रामकृष्णादि अन्यान्य अवतार होते हैं, वैसे ही महालक्ष्मी, महागौरी, महासरस्वती आदि अवतार होते हैं। यद्यपि श्री

भगवती नित्य ही हैं, तथापि देवताओं के कार्य के लिए समय-समय पर वे अनेक रूपों में प्रकट होती रहती हैं। जगन्मूर्ति भगवती नित्य ही हैं, और उन्हीं से ही चराचर प्रपञ्च व्याप्त है, तथापि उनकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से होती है। देवताओं के कार्य के लिए जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होने पर भी 'देवी उत्पन्न हुई, प्रकट हो गई' यों कही जाती हैं।

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम॥
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥ *सप्तशती, 1.64-66*

कुछ लोगों का कहना है कि 'शास्त्रों में मायारूप भगवती की ही उपासना कही गई है, माया वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार मिथ्या है, अतः मुक्ति में उसकी अनुगति नहीं हो सकती। अतः भगवती की साधना अश्रद्धेय है।' *नृसिंहतापिनी* में स्पष्ट उल्लेख है कि नारसिंही माया ही सारे प्रपञ्च की सृष्टि करती है, वही सबकी रक्षा करती है, और वही सबका संहार करती है। उसी मायाशाक्ति को जानना चाहिए। जो उसे जानता है वह मृत्यु को जीत लेता है, पाप्मा तो तर जाता है तथा अमृतत्त्व एवं महती श्री को प्राप्त करता है।

माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सृजति, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदम् संहरति। तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्यात् य एतां मायां शक्तिं वेद, स मृत्युं जयति, स पाप्मानं तरति, सोऽमृतत्वं गच्छति, महती श्रियमश्नुते।

देवता भी कहते हैं- आप वैष्णवीशक्ति, अनन्तवीर्या एवं विश्व की बीजभूता माया हैं।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया। – *दुर्गासप्तशती*

इन सभी वचनों से स्पष्ट है कि भगवती मायारूपा ही हैं। देवीभागवतादि के अनुसार माया स्वयं जड़ है। इसी माया की उपासना का यत्र-तत्र स्थानों में विधान है, जो अश्रद्धेय ही है। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इसका भाव दूसरा है और निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि देवी साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः – कासि त्वं महादेवी? साब्रवीत अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकम् जगत। — *देव्यथर्वशीर्ष*

'अर्थात् देवताओं ने देवी का उपस्थान (उनके निकट पहुँच) कर उनसे प्रश्न किया- 'आप कौन हैं?' देवी ने कहा- 'मैं ब्रह्म हूँ, मुझसे ही प्रकृति पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न होता है।' इसीप्रकार **'अथ ह्येषां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति, भुवनाधीश्वरी तुर्यातीता'** (*भुवनेश्वर्युपनिषद्*) 'स्वात्मैव ललिता' (*भावनोपनिषद्*) आदि वैदिक वचनों से तुर्यातीता ब्रह्मस्वरूपा ही भगवती हैं, यह स्पष्ट है। 'त्रिपुरातापिनी, सुन्दरीतापिनी आदि उपनिषदों में 'परोरजसे' आदि गायत्री के चतुर्थ चरण से प्रतिपाद्य ब्रह्म के वाचकरूप से 'ह्रीं'' बीज को बतलाया है। 'काली, तारा' उपनिषदों में भी ब्रह्मरूपिणी भगवती की ही उपासना प्रतिपादित है। पुराणों संहिताओं का भी साक्ष्य देखिए, *भूतसंहिता* में कहा है—

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्।
आराधयेत् परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्॥

अर्थात् 'संसार निवृत्ति के लिए प्रपञ्चस्फुरणशून्य सर्वसाक्षिणी आत्मरूपिणी, पराशक्ति की ही आराधना करनी चाहिए।'

परा तु सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका।
सर्वाधिष्ठानरूपा स्याज्जगद्भ्रान्तिश्चिदात्मनि॥ — *स्कन्दपुराण*

अर्थात् 'सच्चिदानन्दस्वरूपिणी परा जगदम्बिका ही विश्व की अधिष्ठानभूता हैं। उन्हीं चिदात्मस्वरूपा भगवती में ही जगत् की भ्रान्ति होती है।'

सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितम् ब्रह्मवादिभिः।
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परम् पदम्।
परात् परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्॥
अनन्तं प्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम्।
शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं दैन्यवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम्॥ — *कूर्मपुराण*

उपर्युक्त सभी वचनों से निर्विकार, अनन्त, अच्युत, निरंजन, निर्गुण, ब्रह्म को ही भगवती का वास्तविक स्वरूप बतलाया गया है। *देवीभागवत* में ही कहा गया है निर्गुणा और सगुणा दो प्रकार की भगवती हैं। रागिजनों के लिए सगुणा सेव्य हैं और विरागियों के लिए निर्गुणा उपास्य हैं।

निर्गुणा सगुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः॥

'ब्रह्माण्ड पुराण 'के ललितोपाख्यान में कहा है कि चिदेकरसरूपिणी चिति ही तत्पद की लक्ष्यार्थ रूप हैं।

चित्तिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी।

कहा जा सकता है कि 'ब्रह्मरूपता' के बोधक इन वचनों से भगवती के मायात्व बोधक पूर्व वचनों का विरोध होगा।' किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि वेदान्त में माया को मिथ्या कहा गया है। मिथ्या पदार्थ (अधिष्ठान) अपने आश्रय में कल्पित होता है। अधिष्ठान की सत्ता से अतिरिक्त कल्पित की सत्ता नहीं हुआ करती। माया में अधिष्ठान की ही सत्ता का प्रवेश रहता है। अतः मायास्वरूप की उपासना से भी सत्तास्वरूप ब्रह्म की ही उपासना होगी। इस आशय में मायास्वरूप के बोधक वचनों का भी कोई विरोध नहीं होगा।

जैसे ब्रह्म की उपासना में भी केवल ब्रह्म की उपासना नहीं हो पाती, किन्तु शक्ति विशिष्ट ब्रह्म ही उपासना होती है; क्योंकि ब्रह्म से पृथक् होकर शक्ति नहीं रह सकती और केवल ब्रह्म की उपासना हो नहीं सकती। वैसे ही केवल माया की उपासना सम्भव नहीं। केवल माया की तो स्थिति ही नहीं बनती, फिर उपासना तो दूर की बात रही। अधिष्ठानभूत ब्रह्म से युक्त होकर ही माया रहती है। भगवती की मायारूपता का वर्णन करने पर भी फलतः ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है।

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं शिवस्य सहजा ध्रुवा॥

अर्थात् जैसे अग्नि में ऊष्णता रहती है, सूर्य में किरणें रहती हैं, और चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती है, उसी प्रकार शिव में उसकी सहज शक्ति रहती है। इस तरह विश्व स्वरूपभूता शक्ति के रूप में भगवती का वर्णन मिलता है। जैसे अग्नि में होम करने पर भी अग्निशक्ति में होम समझा जाता है। इसी तरह माया को भगवती कहने पर भी ब्रह्म को भगवती समझा जा सकता है। अतः भगवती की उपासना को ललिता त्रिशतीभाष्यादि के अनुसार सर्वत्र ब्रह्म की ही उपासना समझनी चाहिए।

जो वाक्य माया को मिथ्या प्रतिपादित करते हैं उनमें तो केवल माया का ही ग्रहण होता है; क्योंकि ब्रह्म का मिथ्यात्व ही नहीं है। वह तो त्रिकालाबाध्य, सत्स्वरूप अधिष्ठान है। फिर उपास्य माया पदार्थान्तरगत ब्रह्मांश मोक्षदशा में भी अनुस्यूत रहेगा, अतः मुक्ति में उपास्य स्वरूप का त्याग भी नहीं होगा। 'अन्तर्यामि ब्राह्मण' में पृथ्वी से लेकर माया पर्यन्त सभी पदार्थों में चेतन सम्बन्ध से देवतात्व बतलाया गया है। **'सर्वे खल्विदं ब्रह्म'**।

इस श्रुति के अनुसार भी सब कुछ ब्रह्म ही है। ऐसा कहा गया है। *'सूत संहिता'* में भी कहा है—

चिन्मात्राश्रयमायायाः शक्त्याकारो द्विजोत्तमाः।
अनुप्रविष्टा या संवित्निर्विकल्पा स्वयमप्रभा॥
सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी।
सा शिवा परमा देवि शिवाभिन्ना शिवंकरी॥

'चिन्मात्र परब्रह्म के आश्रित रहने वाली माया के शक्त्याकार में अनुप्रविष्ट स्वयंप्रभा, निर्विकल्पा, सदाकारा, सदानन्दा, संविद् ही शिवाभिन्न शिवस्वरूपा परमा देवी है।' अथवा भगवती-स्वरूप के प्रतिपादक वाक्यों में जो माया, शक्ति, कला आदि शब्द हैं, वे सब लक्षणों से मायाविशिष्ट, कलाविशिष्ट ब्रह्म के ही बोधक समझने चाहिए।

मायाविशिष्ट ब्रह्म ही 'भगवती' शब्द का अर्थ है। यह बात स्वयं सदाशिव ने भी कही है।

नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित्।
मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्तितम्॥
मायाशक्त्यादिशब्दाश्च विशिष्टस्यैव लक्षकाः।
तस्मान्मायादिशब्दैस्तद् ब्रह्मैवोपास्यमुच्यते॥

वहाँ एक पक्ष में केवल चैतन्य ही मायादि शब्दों से उपास्य कहा गया है। द्वितीय पक्ष में मायाविशिष्ट ब्रह्म मायादि शब्दों से कहा गया है। साकार देवता विग्रह सर्वत्र ही शक्ति विशिष्ट ब्रह्मरूप से ही उपास्य होता है। भगवती विग्रह में भी भाषण, दर्शन, अनुकम्पा आदि व्यवहार देखा जाता है फिर उसमें जड़त्व की कल्पना किस तरह की जा सकती है? विराट्, हिरण्यगर्भ अव्याकृत, ब्रह्म, विष्णु, रूद्रादिकों के स्वरूप में एक-एक गुण की प्रधानता है, जब कि माया गुणत्रय का साम्यावस्था रूप है। वह केवल शुद्ध ब्रह्म के आश्रित है। मायाविशिष्ट तुरीय ब्रह्म ही भगवती की उपासना में ग्राह्य है। यह दिखलाने के लिए कहीं-कहीं भगवती को माया, प्रकृति आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। मैत्रायणि श्रुति में स्पष्ट कहा गया है कि तीनों गुणों की साम्यावस्थारूपाप्रकृति परब्रह्म में रहती है, और मूलप्रकृति-उपलक्षित ब्रह्मशुद्ध तुरीय रूप ही है, अतएव 'त्वं वैष्णवी शक्तिः' इत्यादि स्थलों में तुरीय ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती का ही शक्ति रूप में वर्णन समझना चाहिए। इसप्रकार माया पर मुक्ति के अनन्वयी होने या अश्रद्धेय होने का दोष कथमपि लागू नहीं होता है।

इसप्रकार स्पष्ट है कि एक-एक गुण की अपेक्षा गुणत्रय की साम्यावस्था उत्कृष्ट है और तद्रूपा माया या प्रकृति ही जिसका स्वरूप है, उस भगवती की उपासना परमावश्यक है। वही ब्रह्मविद्या है, वही जगज्जननी है। उसी से समस्त विश्व व्याप्त है, जो उसकी उपासना नहीं करता, उसके पुण्य को माता भस्म कर देती है-

यो न पूज्यते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी॥ — *वैकृतिकरहस्य, 38*

अतएव कामार्थी, धनार्थी, मोक्षार्थी सभी के लिए भगवती की उपासना परमावश्यक है।

'देवीभागवत' के प्रथम मन्त्र में ही देवी के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का संकेत मिलता है।

'सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।'

वह भगवती सर्वचैतन्यरूपा अर्थात् सर्वात्मस्वरूपा है, सबका प्रत्यक्चैतन्य आत्मस्वरूप ब्रह्म वही है वह स्वतः ही सर्वोपाधि निरपेक्ष तथा अखण्ड बोधरूप आत्मा है। ब्रह्मविषयक शुद्ध स्वान्तर्मुख वृत्ति पर प्रतिबिम्बित होकर वही अनादि ब्रह्मविद्या है एक ही शक्ति अर्न्तमुख होकर विद्यातत्त्वस्वरूपिणी होती है। तदुपाधिक आत्मा 'तुरीया' कहलाती है। बहिर्मुख होकर वही 'अविद्या' कहलाती है तदुपाधिक आत्मा 'प्राज्ञ' है। मायाशवल ब्रह्म ही ध्यान का विषय है, वही बुद्धि प्रेरक है। अतः वेदान्त की दृष्टि से शक्तिरूपा भगवती सर्वोपाधि-विर्निमुक्त स्वप्रकाशचिति ही है। और वो ही परब्रह्म, आत्मा आदि शब्दों से लक्षित होती है।

शाक्ताद्वैत या तान्त्रिक दृष्टि में भगवती—तन्त्रों के अनुसार 'प्रकाश' ही शिव और 'विमर्श' ही शक्ति है। संहार में शिव का प्राधान्य रहता है, तो सृष्टि में शक्ति का, प्रभा में इदमंश ग्राह्य है, और अहमंश ग्राहक माना जाता है। भीतर वर्तमान पदार्थों का ही वाह्यरूप में अवभास होता है।

वर्तमानावभासानां भावानामवभासनम्।
अन्तःस्थितवतामेव घटते वहिरात्मना॥

प्रकृति में सूक्ष्म रूप से सभी वस्तुएं स्थित हैं। परमशिव और शक्ति दोनों ही श्लिष्ट होकर रहते हैं। निःस्पन्द परम शिवतत्त्व और निषेधात्मक तत्त्व ही शक्तितत्त्व है–

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पतः।

अर्थात् ज्ञान और अर्थ दोनों ही अविकल्पित होकर एक में रहते हैं, तब साम्यावस्था समझी जाती है। भगवती के विषय में तन्त्र दृष्टि का यह सूत्ररूप परिचय है। अब शाक्ताद्वैत में भगवती के स्वरूप का विवरणात्मक परिचय, संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शाक्तद्वैत की दृष्टि यह है कि अनन्त विश्व का अधिष्ठानभूत शुद्ध बोधस्वरूप प्रकाश ही शिवतत्त्व समझा जाता है। उस प्रकाश में जो विमर्श है, वही शक्ति है। प्रकाश के साथ विचारात्मक शक्ति का अस्तित्व अनिवार्य है।

बिना प्रकाश के विमर्श नहीं और बिना विमर्श के प्रकाश भी नहीं रहता यद्यपि वेदान्तियों की दृष्टि में बिना विमर्श के भी अनन्त, निर्विकल्प प्रकाश रहता है, तथापि शाक्ताद्वैतियों की दृष्टि से विमर्श हर समय रहता है। यहाँ तक कि महावाक्यजन्य परब्रह्माकार वृत्ति के उत्पन्न हो जाने पर भी, आवरक अज्ञान के मिट जाने पर भी स्वयं वृत्तिरूप विमर्श बना ही रहता है।

वेदान्ती इस वृत्ति को स्व–पर–विनाशक मानते हैं, किन्तु शाक्ताद्वैती कहते हैं कि अपने आप में ही नाश्य–नाशक भाव सम्भव नहीं है। यदि उस वृत्ति के लिए दूसरी वृत्ति की उत्पत्ति मानेगें तो उसके भी नाश के लिए वृत्यन्तर मानना पड़ेगा, इसप्रकार अनवस्था हो जाएगी। अविद्या स्वयं नष्ट होने वाली है, अतः उससे भी उस वृत्तिरूपा विद्या का नाश नहीं कहा जा सकता। विरोध न होने के कारण विद्या–अविद्या का सुन्दोपसुन्दन्याय से भी परस्पर नाश्य–नाशक भाव नहीं कहा जा सकता।

जो कहा जाता है कि जैसे कनकरज जल के भीतर भी मिट्टी को नष्ट करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है, वैसे ही विद्यारूपावृत्ति स्वातिरिक्त अविद्या एवं तत्कार्य जगत् को नष्ट कर स्वयं भी नष्ट हो जाती है; किन्तु दृष्टांत में कनकरज का नाश नहीं होता है, किन्तु इतर रजों को साथ लेकर कनकरज पानी के नीचे बैठ जाता है। अतः यहाँ भी उक्त दृष्टान्तों से वृत्ति का नाश नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति

विषम् विषयान्तरम् जरयति स्वयमेव जीर्यति।
पयः पयोऽन्तरम् जरयति स्वयमेव च जीर्यति॥

इत्यादि युक्तियों की भी है। अर्थात् वहाँ भी विष या पय नष्ट नहीं होता, प्रत्युत् दूसरे पय या विष की अजीर्णता मिटाकर स्वयं भी पच जाता है। अतएव इन दृष्टान्तों से भी वृत्ति का नाश नहीं कहा जा सकता। इसलिए वृत्तिरूप विद्या से संश्लिष्ट होकर ही अनन्त प्रकाशस्वरूप शिव सदैव विराजमान रहता है।

इसी तरह यह भी विचार उठता है कि अविद्या–निवृत्ति क्या है? कोई वस्तु कहीं से निवृत्त होती हुई भी कहीं–न–कहीं रहती ही है। यदि 'ध्वंसरूपनिवृति' मानी जाए तो अपने कारण में उसकी स्थिति माननी पड़ेगी,

क्योंकि घटादि का ध्वंस होने पर भी अपने कारण कपाल, चूर्ण आदि कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में उसकी स्थिति माननी ही पड़ती है। यही स्थिति लयरूपा निवृत्ति की भी है। यदि निवृत्ति को सर्वथा निःस्वरूप कहें तो उसके लिए प्रयत्न नहीं हो सकता, सही कहें तब तो उसी रूप में शक्ति की स्थिति रह सकती है, अनिर्वाच्य कहें तो उसकी भी ज्ञानविवर्त्यता माननी पड़ेगी। अतएव कुछ आचार्यों ने पञ्चप्रकार अविद्या-निवृत्ति मानी है। तथा उस रूप में भी विमर्शरूपा शक्ति का अस्तित्व रहता ही है, हाँ उससमय अन्तर्मुख होकर शिवस्वरूप से ही शक्ति स्थित रहती है।

मुक्तावर्न्तमुखैव त्वं भुवनेश्वरी तिष्ठसि॥ — *शक्ति प्रदर्शन*

इसलिए शक्ति को नित्य कहा गया है—

'नित्यैव सा जगन्मूर्तियया सर्वमिदं ततम्।'
'नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो भवति विद्यते।' — *बृहदारण्यक उपनिषद्, 4*

इस वचन से वृत्तिरूप दृष्टि को नित्य समझा जाता है, जबकि वेदान्ती द्रष्टा की स्वरूपभूता दृष्टि को नित्य कहते हैं।

शिव परात्पर—विमर्श प्रकाश शक्ति का शिव में प्रवेश से बिन्दु, स्त्रीतत्त्व, नाद की उत्पत्ति हुई। जब दूध-पानी की तरह वे दोनों एक हो गये, तब संयुक्त बिन्दु हुआ। वही 'अर्द्धनारीश्वर' हुआ। इनकी परस्पर आसक्ति ही काम है। श्वेतबिन्दु पुंसत्व का तो रक्तबिन्दु स्त्रीत्व का परिचायक है। तीनों जब मिलते हैं, तब कामकला की उत्पत्ति होती है। मूल, बिन्दु, नाद और श्वेतबिन्दु तथा रक्तबिन्दु इन चारों के मिलने से सृष्टि होती है। किसी के मत में नाद के साथ अर्द्धकला भी हुई। कामकला देवी का संयुक्त बिन्दु वदन है, अग्नि और चन्द्र वक्षःस्थल है, अर्द्धकला जननेन्द्रिय है। 'अ' शिव का प्रतीक है तो 'इ' शक्ति का। यह त्रिपुरसुन्दरी 'अहं' से व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि व्यक्तित्व और अहं से पूर्ण है। सहस्रार के चन्द्रगर्भ से स्रवित आसव का पानकर, ज्ञान कृपाण से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आसुर पशुओं को मारकर, वञ्चना, पिशुनता, ईर्ष्या रूप मछलियों को पकाकर, आशा, कामना, निन्दारूप मुद्रा को धारण कर, मेरूदण्डाश्रिता रमणियों में रमण कर सामरस्य की प्राप्ति होती है। पञ्चमकार का भी यही रहस्य है। शिव-शक्ति का संयोग ही 'नाद' है—

यदयमनुत्तरमूर्ति निजेच्छया विश्वमिदं स्रष्टुम्।
पस्पन्दे सस्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥

शिव संश्लिष्ट शक्ति विश्व का बीज है। अहं-प्रकाश में शिव निश्चेष्ट रहता है तो शक्ति सक्रिय रहती है। यही काली की विपरीत रति है। विमर्श रूपा शक्ति जब शिव में लीन होती है, तब 'उन्मनावस्था' होती है, उसके विकसित होने पर 'समानअवस्था' होती है—

सच्चिदानन्दविभवात् संकल्पात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥

विभव-सच्चिदानन्द परमेश्वर संकल्प से शक्ति उससे नाद और नाद से बिन्दु का प्राकट्य होता है। नाद में जो क्रियाशक्ति है, वही बिन्दु की 'अहंनिमेषा' है। सृष्टि की अन्तिम अवस्था है- 'इदम्' 'अहम्' महाप्रलय की पूर्वावस्था है और शक्ति की उच्छूनावस्था घनीभाव है। ज्ञानप्रधाना शक्ति क्रियारूपेण रजःप्रधाना और बिन्दु तत्त्व से तमःप्रधाना रहती है। व्यवहार में शक्तिमान की अपेक्षा शक्ति का आदर अधिक है। बुद्धि के बिना बुद्धिमान् का, बल के बिना बलवान का, शिल्पशक्ति के बिना शिल्पी का कुछ भी मूल्य नहीं रहता है। मिठास बिना मिश्री का, सुगन्ध के बिना पुष्पों का, सौन्दर्य के बिना नारी का, लज्जा के बिना कुला;ना का कुछ भी महत्व नहीं रह जाता है। शाक्ताद्वैत की दृष्टि से शक्ति शिवरूप ही है। सच्चिदानन्द में चिद्भाव विमर्श है, सत् का भाव शिव है। कहा गया है।

रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाःकिल।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥

अर्थात् कोई भी प्राणी यदि शिव से रहित या विष्णु से रहित रहता है तो उसे कोई रूद्रहीन या विष्णुहीन नहीं कहता किन्तु शक्ति के हीन होने पर लोग उसे शक्तिहीन कहते हैं। और उसकी दशा शोचनीय होती है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'

बलहीन प्राणी को अपनी आत्मा भी उपलब्ध नहीं हो सकती।

गिरामाहुर्देवीद्रुरहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयां।

तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी॥ — *सौन्दर्यलहरी, 48*

इस प्रकार परब्रह्ममहिषीरूपा भगवती को आचार्यों ने तुरीया चिच्छक्तिरूपा ही बतलाया है।

शंकरः पुरूषाः सर्वे स्त्रियाः सर्वा महेश्वरी।
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी॥
मानः स एव विश्वात्मा मन्तव्या तु महेश्वरी।
आकाशः शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया॥

समुद्रवेला-वृक्षलता, शब्द-अर्थ, पदार्थ-शक्ति, पुंस्त्री, यज्ञ-इज्या, क्रिया-फलभुक्, गुण-व्यक्ति, व्यञ्जकतारूप, बोध-बुद्धि, धर्म-सत्क्रिया, सन्तोष-तुष्टि, इच्छा-काम, यज्ञ-दक्षिणा, आज्याहुति-पुरोडाश, काष्ठा-निमेष, मुहूर्त-कला, रात्रि-दिन, ज्योत्स्ना-प्रदीप, ध्वज-पताका, तृष्णा-लोभ, रति-राग। उपर्युक्त भेदों से उसी तत्त्व का अनेकता प्राकट्य होता है। 'शक्ति' शब्द से बहुत से लोग केवल माया-अविद्या आदि बहिरङ्ग शक्तियों को ही समझते हैं, किन्तु भगवान् की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति, जीवनभूता परमप्रकृति आदि भी 'शक्ति' शब्द से व्यवहृत होती है। जैसे सिता-द्राक्षा-मधु आदि में मधुरिमा

उनका परम अंतर; स्वरूप ही है, वैसे ही परमानन्द रसामृतसार-समुद्र भगवान् की परमान्तरंगस्वरूपभूता शक्ति ही भगवती है।

विष्णुशक्तिः परा ज्ञेया क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ — *विष्णुपुराण*

यहाँ विष्णु और क्षेत्रज्ञ को भी शक्ति ही कहा है। इसप्रकार यद्यपि शक्तियाँ अनेक हैं, तथापि आनन्दाश्रित, आह्लादिनी, चेतनांशाश्रित, संवित् सदंशाश्रित सन्धिनी शक्ति होती है। क्षेत्रज्ञ तटस्था शक्ति है और माया बहिरङ्गा शक्ति मानी जाती है। तत्त्वविद लोग कहते हैं कि जैसे पुष्प का सौगन्ध्य सम्यक् रूप से तभी अनुभूत हो सकता है जब पुष्प को घ्राणेन्द्रिय हो। अन्य लोगों को तो व्यवधान के साथ किञ्चितमात्र ही गन्ध का अनुभव होता है। उसी तरह भगवती के सुन्दर रूप का सम्यक् अनुभव परमशिव को ही प्राप्त होता है। वह अन्य की दृष्टि का विषय ही नहीं है—

घृतद्राक्षाक्षीरं मधुमधुरिमा कैरपि परै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्ये परमशिवदिङ्मात्रविषयः
कथंकारः ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥ —*आनन्दलहरी*

अर्थात् वस्तुतः निर्गुणा, सत्या-सनातनी, सर्वस्वरूपा भगवती ही भक्तानुग्रहार्थ सगुण होकर प्रकट होती है। वैसे तो भगवती के अनन्त स्वरूप हैं, विशेषतः शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री ये नौस्वरूप प्रधान हैं—

कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्म स्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
सर्वस्वरूपा सर्वेशी सर्वाधारा परात्परा।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वमूला निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

इसप्रकार वे ही सर्वेश्वरी चराचर में सभी स्वरूपों में व्याप्त हैं।

डॉ. गीतांजली शुक्ला
प्रवक्ता, संस्कृत,
इण्टर मीडिएट कॉलेज बाबागंज,
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश
दूरभाष- 08573997242, 07266849889

वैदिक वाङ्मय में महिमामय मन और उसकी शक्तियों का संवर्धन

डॉ. राजकुमारी त्रिखा

विश्वसाहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में सभी प्रकार के ज्ञान का अकल्पनीय रूप से अक्षय भण्डार उपलब्ध होता है। मान्यता है—

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति। — *मनुस्मृति।*

यह उक्ति शत प्रतिशत ठीक है। उन्नीसवीं शताब्दी में मनोविश्लेषण, मनोविज्ञान, मानसिक चिकित्सा आदि विषयक चिन्तन प्रारम्भ हुआ। परन्तु सहस्रों वर्षों पूर्व ऋषि-मुनियों ने वेदमन्त्रों में मानवीय मन पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने मन के स्वरूप, स्वभाव तथा महत्त्व पर गम्भीर विचार किया तथा मन की शक्तियों के क्षीण होने के कारण तथा उन शक्तियों का संवर्धन करने वाले उपायों पर भी गहन चिन्तन किया है।

मन का स्वभाव है कि वह निरन्तर संकल्प विकल्प सोच-विचार करता ही रहता है। अणु समान छोटा-सा मन है, पर है बहुत शक्तिशाली। सोते जागते, किसी भी समय, यह सूक्ष्म मन अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी चला जाता है, और दूर से दूर स्थानों पर जाकर भी, बड़ी तीव्र गति से वापिस आता है।[1] जब व्यक्ति अपने पूजाघर में शान्ति से बैठकर अपनी पूजा, साधना आदि धार्मिक कार्य कर रहा होता है, तब भी यह चञ्चल मन विदेश में गये हुए अपने पुत्र/मित्र/सम्बन्धियों के पास चला जाता है। इसीलिए वैदिक ऋषि मन को जविष्ठ अर्थात् सर्वाधिक वेगवान् कहते हैं।[2] *ऋग्वेद* में सूर्य की गति का वर्णन करते हुए उसे मन के समान तीव्रगामी बताया गया है।[3] सूर्य का प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील प्रति सैकण्ड की गति से सब लोकों में पहुँचता है। इतनी ही तीव्र गति से मन भी अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच जाता है, यही ऋषि के कथन का तात्पर्य है।

यह मानव मन स्वयं ही चञ्चल नहीं है, अपितु यह शरीर को भी चञ्चल बना देता है। छोटा-सा अणु समान मन, छः फुट लम्बे शरीर को अपनी इच्छानुसार घुमाता है। जहाँ जाने के लिए मन प्रेरित करता है, व्यक्ति वहीं जाने के लिए चल पड़ता है। यह मन ही अच्छे-बुरे सारे कार्य करवाता है। यदि मन का संयोग न हो मनुष्य कोई भी कार्य भलीभाँति नहीं कर सकता। सभी इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य मन से प्रेरित होकर ही करती हैं।[4] अगर मन किसी अन्य उलझन में लगा हो, और उसी तरफ मनन चिन्तन चल रहा हो, तो नेत्रों के

सामने कितना भी सुन्दर दृश्य क्यों न हो, नेत्र उसे देखते तो रहेंगे, किन्तु बुद्धि में वह अंकित/दर्ज नहीं हो पायेगा। उस दृश्य की सुन्दरता का आनन्द, मन नहीं उठा पायेगा। न ही उस सौन्दर्य को ग्रहण कर पायेगा। इसी प्रकार श्रवणेन्द्रिय भी मन का संयोग होने पर ही शब्द व उसकी विशेषता को ग्रहण कर पायेगी कि कुछ ध्वनि हो रही है, कोई गाने का रिकार्ड चल रहा है, परन्तु उस गाने की शब्दावली को, स्वरमाधुर्य को, और निहित भाव को न समझ पायेगी और न ही उसका आनन्द ले पायेगी। कारण कि श्रवण-क्रिया के साथ मन नहीं हुड़ा है।

इसी प्रकार अन्य सभी इन्द्रियाँ भी मन से संयुक्त होकर ही अपना कार्य सुचारु रूप से कर पाती हैं। इस प्रकार मन इन्द्रियों का प्रकाशक है तथा इसे **ऋषि ज्योतिषां ज्योतिः** कहते हैं। इसे सभी इन्द्रियों से श्रेष्ठ तथा उनका अध्यक्ष भी कहा गया है।[5] यह मन ही पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि तथा चित्त के द्वारा समस्त व्यवहार सम्पन्न करवाता है। जीवन में व्यवहार रूपी यज्ञ में ये सातों सहायक मानो हवि डालने वाले होता है। अतः ऋषि मन का वर्णन करते हुए उसे सात होताओं वाले यज्ञ का आयोजक कहते हैं।[6]

प्रतिदिन के व्यवहार तथा इन्द्रियों के इन्द्रियार्थ भोग के व्यवहार से मन पर प्रभाव पड़ता है। उस अनुभव का विश्लेषण बुद्धि द्वारा किया जाता है, और चित्त में उसकी स्मृति व प्रभाव संस्कार रूप में एकत्रित हो जाता है। चित्त पर पड़े ये संस्कार जन्म-जन्मान्तरों तक विद्यमान रहते हैं। (मन ही निश्चय करते समय बुद्धि, विवेकपूर्वक स्मरण करते समय चित्त कहलाता है।) ये संस्कार मोक्षपर्यन्त विद्यमान रहते हैं। शरीर नष्ट होने के पश्चात् भी मन सक्रिय रहता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—व्यक्ति जिस-जिस (व्यक्ति इत्यादि) को स्मरण करते-करते हुए शरीर त्यागता है, मृत्यु के पश्चात् उसका जीवात्मा, उसी व्यक्ति के पास चला जाता है, क्योंकि उसका मन उस व्यक्ति, स्थान आदि के विचारों से भरा रहता है।[7] ऐसा अनुभव अनेक व्यक्तियों को हुआ है कि उनका प्रियजन मरणासन्न था। वह मर गया, परन्तु उन व्यक्तियों को उस मरणासन्न प्रियजन की मृत्यु का समाचार अभी नहीं मिला। परन्तु उस मृत प्रियजन की आत्मा उन व्यक्तियों के पास स्वप्न में आती है, बातें करती हैं, कुछ सन्देश देना हो, तो उसे भी देकर जाती है। बाद में उस रोगी की मृत्यु का समाचार मिलने पर उन प्रियजनों को पता चलता है कि मृत्यु के उपरान्त ही यह व्यक्ति उन लोगों के सपने में दिखा था।

इस प्रकार मन मृत्यु के पश्चात् भी सक्रिय रहता है। अब प्रश्न पैदा होता है कि मृत्यु के पश्चात् भी मन सक्रिय कैसे रहता है। शरीर तो सभी कार्यों का आधार है। शरीर के अभाव में मन कैसे काम करता है?

उपनिषदों में बताया गया है कि मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर निकल जाता है। यह सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर की ही भाँति आकृति वाला तथा अँगूठे के आकार का होता है। इसमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के विषय, पञ्चभूतों के सूक्ष्म रूप, पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा चित्त होते हैं। इस पूरे

समूह को प्राण गतिशील बनाता है। यह सूक्ष्म शरीर प्राणों की सहायता से उड़ता हुआ, अपने कर्मानुसार मिलने वाले लोकों में जाता है।[8]

इस प्रकार मन शरीरनाशके पश्चात् भी सक्रिय रहता है। पिछले अनेक जन्मों के संस्कार मन में विद्यमान रहते हैं। अत: शरीर की अपेक्षा यह मन अधिक समय तक, मोक्षपर्यन्त क्रियाशील रहता है। साधना के उच्च स्तर पर पहुँचने के बाद मन बुद्धि में लीन हो जाता है, बुद्धि अहंकार में, फिर प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है और एक ही तत्त्व **परब्रह्म** ही बचता है। इस प्रकार मन मोक्षपर्यन्त क्रियाशील रहता है, अत: वेद में ऋषि मन को अमृत भी कहते हैं।

अनेक जन्मों के संस्कारों का संग्रह होने के कारण मन भूत, वर्तमान और भविष्य को भी नियन्त्रित करता है। इसप्रक्रिया को *बृहदारण्यकोपनिषद्* में सविस्तार समझाया गया है। ऋषि कहते हैं—मन में जो इच्छा उत्पन्न होती है, व्यक्ति उसी के अनुसार काम करता है। जैसा कर्म करेगा, वैसा ही उसको फल मिलेगा। उस पिछले कर्म फल के अनुसार ही भूतकाल में हमें फल मिला, वर्तमान कर्मफल के अनुसार ही हमारा वर्तमान और भविष्य बनता है।[9]

शास्त्र कहते हैं कि मन की भावनाओं से अगला जन्म भी प्रभावित होता है। गर्भ में शिशु के विकास का क्रम वर्णन करते हुए कौन-सी इन्द्रिय पहले बनती है, इस प्रसंग में महाभारत में कहा गया है—बीजभूत कर्म से जिस इन्द्रिय को प्रकट होने की प्रेरणा प्राप्त होती है, रागयुक्त चित्त एवं अहङ्कार से वही-वही इन्द्रिय प्रकट हो जाती है। शब्द के प्रति अनुराग से कर्णेन्द्रिय बन जाती है, गन्ध ग्रहण करने की इच्छा से नासिका, स्पर्श के प्रति आसक्ति से त्वचा प्रकट होती है।[10]

यदि किसी कारणवश या परिस्थितिवश किसी इन्द्रिय के विषय (रूप, रस आदि) से घृणा अथवा जुगुप्सा का भाव मन में गहराई तक पहुँच जाये, तो मनुष्य की वह इन्द्रिय नहीं बनती। जैसे शब्द सुनने के प्रति विरक्ति अथवा घृणा होने पर कानों की रचना नहीं होती। दूसरे ओर, यदि किसी जीव को पूर्वसंस्कारवश संगीत सुनने का शौक है, तो गर्भ में उसके कान पहले बनेंगे।[11]

इस प्रकार यह अमृत मन हमारे बीत चुके जीवन का कारण है और वर्तमान तथा भावी जीवन पर भी प्रभाव डालता है।[12] मन में अनेक शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो साधारण अवस्था में दिखाई नहीं देती। परन्तु साधना द्वारा मन की चञ्चलता कम होने पर उसी प्रकार दिखाई देती हैं, जिस प्रकार चलते पंखें की तीनों पंखुड़ियाँ नहीं दिखाई देती, परन्तु पंखा रुक जाने पर तीनों पंखुड़ियाँ साफ-साफ दिखाई देती हैं। साधना द्वारा एकाग्रता को प्राप्त हुए मन में भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

समाधि की उच्च स्थिति में कभी-कभी अनायास ही अथवा संकल्प होने पर साधक को भूतकाल में घटित हुई वर्तमान में घटित हो रही, अथवा भविष्य में घटने वाली घटनाएँ दिख जाती हैं। ऐसी ही समाधि की

उत्कृष्ट स्थिति में हमारे ऋषियों को वेदों के मन्त्र दिखाई दिये। ब्रह्माण्ड की रचना कैसे हुई, यह ज्ञान भी उन्हें समाधि की अवस्था में हुआ, जिसका वर्णन नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त तथा पुरुष सूक्त में पाया जाता है।

वर्तमानकाल में घटित हो रही घटनाओं का ज्ञान भी मन की शक्ति से पाया जा सकता है। इसी प्रकार कभी किसी समस्या का समाधान देने वाला दिशा-निर्देश भी मन दे देता है। स्वामी रामतीर्थ के जीवन की घटना है। स्वामी जी गणित का एक प्रश्न हल कर रहे थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी हल नहीं निकला। परन्तु उन्होंने धैर्य तथा दृढ़तापूर्वक प्रयत्न जारी रखा, और एक चाकू पास में रख कर प्रण किया, "यदि प्रातःकाल तक इस प्रश्न का हल नहीं निकला तो मैं स्वयं को चाकू मार कर अपना अन्त कर लूँगा।" स्वामी जी पूरी रात प्रश्न हल करते रहे, परन्तु प्रश्न हल नहीं हुआ। भोर का उजाला होने को था। स्वामी जी, अपने कमरे से बाहर देखने को निकले कि यदि प्रात: हो गई हो, तो स्वयं को चाकू मार अपना प्रण पूरा करें। परन्तु जैसे ही उन्होंने आकाश की ओर देखा, उन्हें वहाँ (आकाश में) सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ अपने प्रश्न का हल दिखाई दिया। यही है मन की असीमित शक्ति, जो मन की एकाग्रता से प्रकट होती है। ऐसे ही एकाग्र मन में ऋग्वेद, अथर्ववेद की ऋचाएँ साधक के मन में अपने रहस्य प्रकट करती हैं। साम का गीतिसमूह अपनी अन्तर्ध्वनियों को निनादित करता है और यजुर्वेद के मन्त्र (शस्त्र) अपना तत्त्व प्रकट करते हैं।[13]

मन की इस असीमित शक्तियों के सीमित अथवा क्षीण हो जाने के कारण साधारण मनुष्यों में इसके दर्शन नहीं होते। अब जिज्ञासा होती है कि मन की शक्तियों का क्षय क्यों व कैसे होता है और इन शक्तियों को किस प्रकार पुनर्जागृत् व संवर्धित किया जा सकता है।

वैदिक साहित्य तथा भारतीय दर्शनों में काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि मनोभावों को नकारात्मक तथा मन की शक्तियों के क्षरण का प्रमुख कारण माना है। यही कारण है कि हमें इन नकारात्मक भावनाओं तथा विचारों से बचने की प्रार्थनाएँ सर्वत्र उपलब्ध होती है। वैदिक ऋषि प्रार्थना करते हैं कि कल्याणकारी, विघ्नरहित, अप्रतिहत, शुभफलदायक विचार हमें सभी ओर से प्राप्त हों। आलस्यरहित और रक्षक देवता प्रतिदिन हमारी समृद्धि करें।[14] ऋषि कहते हैं कि शुभविचार, उन्नति, विकास और दीर्घायु के साधन हैं तथा अशुभ विचार, रोग, शोक, दीनता और अल्पायु के कारण हैं।[15]

अत: वेदों में भय, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, कटुवचन बोलना आदि नकारात्मक भावों के नाश करने के लिए प्रार्थना पाई जाती है। '**अभयं कृधि**' (*ऋग्वेद*, 8.61.13), '**अस्मद् द्वेष: वितर**' (*ऋग्वेद*, 2.32.2), '**उग्रं वच: अपावधी:**' (*सामवेद*, 353) जैसे मन्त्रांशों में इन मनोविकारों को दूर करने की प्रार्थना पाई जाती है। नकारात्मक विचार साधक के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों का भी नाश करते हैं। ये घातक, मनोबल गिराने वाले तथा अपनी जड़े खुद खोदने वाले होते हैं।[16] अर्थात् ये विचार जिसके मन में रहते हैं, उसका अपूरणीय नाश कर देते हैं। अत: पुन:पुन: इन अशुभ विचारों से बचने की मन्त्रणा दी गई है। सबसे मिल-जुल कर प्रेम से रहना ही वैदिक ऋषि को अभीष्ट है। स्वार्थभाव तथा कंजूसी करना सर्वथा निन्दनीय है, अत: ऋषि कहते

हैं—**केवलाघो भवति केवलादी।** सबको देकर खाओ, अकेले मत खाओ। कभी किसी का मनोबल मत तोड़ो। ऋषि प्रार्थना करते हैं कि मनोबल गिराने वाले दुष्ट व्यक्ति पाश में बँधे।[17] नकारात्मक विचारों की सेना, पापसेना है, यह हमारी अमित्र (शत्रु) सेना है, अत: वृत्रहन् (पापनाशक) इन्द्र से प्रार्थना है कि वह ब्रह्माग्नि के साथ मिलकर उसे भस्म कर दें।[18]

इस मन्त्र से यह संकेत मिलता है कि ब्रह्मज्ञान की अग्नि से ही यह शत्रुसेना नष्ट हो सकती है। अत: ऋषि नकारात्मक भावनाओं को मूल में समाप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं—जो दुर्भावनाएँ मेरे साथ संग्राम कर रही है, आप उन सबका नाश कीजिये। ये दुर्भावनाएँ एक-एक करके नहीं, अपितु सेना बनकर हमारे ऊपर आक्रमण करना चाहती हैं। वैसे ये संस्कार रूप में ही हैं, अभी उद्‌बुद्ध नहीं हुई है। आप इन्हें नीचे दबा दें, ताकि ये उद्‌बुद्ध न होने पाये।[19]

मन की अशान्ति का तथा उसकी शक्ति क्षीण करने वाला प्रधान कारण भोगैषणा ही पूर्ववर्णित नकारात्मक भावों का मूल है। मानव मन में विषयभोगों को भोगने की इच्छा स्वाभाविक रूप से रहती है। वेद कहता है—इन्द्रियों का स्वभाव ही है, विषयों की ओर जाना। स्वयम्भू ने इन्द्रियों को विषयोन्मुखी तथा विषयानुगामी बनाया है। अत: मनुष्य की इन्द्रियाँ स्वभाव से ही भोगों की ओर ही देखती है, अन्तरात्मा को नहीं।[20] इच्छित पदार्थ, भोगविलास की वस्तुएँ पाने की इच्छा तथा उनके लिए प्रयत्न, सभी मन में तनाव उत्पन्न करते हैं। इच्छा पूरी होने पर और अधिक पाने का लोभ, प्राप्त वस्तु से मोह, उसकी सुरक्षा की चिन्ता, खो जाने का भय, आदि भाव मानसिक भंग करते हैं। यदि इच्छा पूरी न हो तो ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध के भाव उदित होते हैं। दूसरे शब्दों में इच्छा, आसक्ति यही पूरी नकारात्मक भावनाओं की सेना की जननी है। अत: ऋषि मन रूपी लगाम को खींच कर इन्द्रियों रूपी घोड़ों को वश में रखने की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं—यह शरीर रथ है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन बुद्धि उनकी लगाम है। यदि अपनी मंजिल तक सकुशल पहुँचना है, तो रथ, घोड़े, लगाम, सब ही मजबूत होने चाहिए। सारथि भी ऐसा कुशल हो, जो घोड़ों को नियन्त्रित रखना जानता हो और रथ के स्वामी आत्मा को उसकी मंजिल, आत्म-दर्शन तक सकुशल पहुँचा सके। मन की शक्ति संवर्धन करने तथा साधना की उच्च भूमिकाओं में पहुँचने के लिए मन तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना ही होगा। अन्यथा आत्मा कभी अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पायेगा। जब मन वश में होगा तो व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, ईर्ष्या, द्वेष आदि के वशीभूत होकर व्यवहार नहीं करेगा; बल्कि वह विवेक के द्वारा उचित-अनुचित का विचार करके ही कार्य करेगा। अशुभ विचार, अशुभ संकल्प धीरे-धीरे दूर होते जायेंगे, तथा शुभ संकल्प उदित होंगे। इससे मन की शक्तियों का क्षीण होना धीरे-धीरे कम होगा तथा शक्ति संवर्धन की प्रक्रिया तीव्र गति से होगी।

शुभ संकल्प तथा शुभ भावों के अन्य भी अनेक लाभ होते हैं। *चरकसंहिता* के अनुसार ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध, मान इत्यादि मन के विकार है, जो अज्ञानवश उत्पन्न होते हैं।[21] आधुनिक विज्ञान भी इन भावों

को स्वास्थ्य के लिए घातक मानता है। इन काम क्रोध लोभ, ईर्ष्यादि कुत्सित मनोभावों की दशा में शरीर के ग्रन्थितन्त्र की क्रियाओं का सन्तुलन बिगड़ जाता है। फलस्वरूप ग्रन्थियों से शरीर की आवश्यकता से कम अथवा अधिक मात्रा में रस निकलने लगते हैं, जो अनेक रोगों को जन्म देते हैं। शुभ संकल्प वाला मन इसीलिए अमृत कहा गया है। शुभ विचार दीर्घ आयु प्रदान करते हैं। परिवार तथा समाज में शान्ति रहती है। मन वश में होगा तो किसी से द्वेष नहीं रहेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या के भाव नियन्त्रित होंगे, तो चोरी, डकैती, हत्या, ठगी, महिलाओं का उत्पीड़न आदि सामाजिक तथा आर्थिक अपराध कम होंगे। इसीलिए *यजुर्वेद* के शिवसंकल्पसूक्त में प्रत्येक मन्त्र के अन्तिम चरण में प्रार्थना की गई है—**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।** ऐसी मनस्थिति में ऋषि कामना करते हैं—**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।** तभी द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, वनस्पति, चराचर जगत् में शान्ति रहेगी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव पल्लवित होगा।

सन्दर्भ

1. यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवेति। दूरंगमं ....। — *यजुर्वेद*, 34.1
2. यदजिरं, जविष्ठम्। — तत्रैव, 6
3. मनो न योध्वनः सद्यः एति। — *ऋग्वेद*, 1.71.9
4. यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते। — *यजुर्वेद*, 34.3
5. यदपूर्वं यक्षमन्तःप्रजानाम्। — तत्रैव, 2
6. येन यज्ञस्तायते सप्त होता। — तत्रैव, 4
7. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
   तं तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः।। — *श्रीमद्भगवद्गीता*, 8.6
8. ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिश्च सूक्ष्मस्थोऽपि लिङ्गमेवेत्युच्यते।। — *योगचूड़ामण्युपनिषद्*, 72
9. यथाकारी यथाचारी तथा भवति, साधुकारी साधुर्भवति, पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन। अथो खल्वाहुः, काममय एवायं पुरुष इति। स यथाकामो भवति, तत्क्रतुर्भवति, यत्क्रतुर्भवति, तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते, तदभिसम्पद्यते।। —*बृहदारण्यकोपनिषद्*, 4.4.5-7
10. कर्मणा बीजभूतेन चोद्यते यद् यदिन्द्रियम्।
    जायते तदहङ्कारात् रागयुक्तेन चेतसा।।
    शब्दरागाच्छ्रोत्रमस्य जायते भावितात्मनः,
    रूपरागात्तथा चक्षुर्घ्राणं गन्धचिकीर्षया।। — *महाभारत*, *शान्तिपर्व*, 213,15-16
11. द्रष्टव्य, *महाभारत में विज्ञान, दर्शन और समाज* — डॉ. राजकुमारी त्रिखा, पृ. 66
12. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीततममृतेन सर्वम्। — *यजुर्वेद*, 34.4
13. यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।। — तत्रैव, 34.5

14. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सद्भिद् वृधेऽसन्, अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।। — *ऋग्वेद*, 1.89.1

15. *ऋग्वेद*, 1.81.8

16. म्रोको मनोहा खनो निर्दाह, आत्मदूषिस्तनूदूषिः। — *अथर्ववेद*, 16.1.3

17. योऽस्माकमिदं मनः हिनस्ति। स दुरिते पाशे बद्धः नियुज्यताम्। — *अथर्ववेद*, 2.12.2

18. अमित्रसेनां मघवन् अस्माञ्छत्रूयतीमनि। उभौ तामिन्द्र वृत्तहन्नग्निश्च दहतं प्रति।। — *सामवेद*, 1865

19. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माभिदासत्यधरं गमया तमः। — *सामवेद*, 1868

20. पराञ्चि खानि व्यतृणत-स्वयम्भूः। तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मा। — *कठोपनिषद्*, 2.1.1

21. ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः।। — *चरकसंहिता*, सूत्रस्थानम्, 7.5

पूर्वप्रोफेसर (संस्कृत)
बी-एफ 95, जनकपुरी
नई दिल्ली, 110058
चलवाणी 09899101944

गीता की टीका एवं भाष्य परम्परा

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

गीता पर विभिन्न भाषाओं में सैकड़ों भाष्य, टीका, अनुवाद, निबन्ध और प्रवचन लिखे जा चुके हैं तथा लिखे जा रहे हैं। इनमें देवीसम्पद्युक्त भगवत्परायण वैराग्य सम्पन्न साधकों तथा महापुरुषों द्वारा लिखे गए सभी प्रामाणिक हैं, क्योंकि सबका ध्येय एक है पर मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। कहा है—

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कार: केशवं प्रति गच्छति।।

यही शिवमहिम्न: स्तोत्र में पुष्पदन्त कहते हैं—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

जिस प्रकार सभी नदियों का जल अन्ततः सागर में समाविष्ट होता है उसी प्रकार रुचि की विभिन्नता के कारण सीधे और टेढ़े-नाना मार्गों पर चलने वाले सभी मनुष्यों का गन्तव्य आप भगवान् ही हैं।

इन समस्त व्याख्याकारों की टीकाएँ भाष्यादि मननीय हैं। इन्हीं की कृपावशात् आज हम लोग गीता को किसी-न-किसी अंश में समझने में समर्थ हो रहे हैं।

गीता एवं सनत्सुजातगीता का सबसे प्राचीन भाष्य 'शाङ्करभाष्य' है जो उपलब्ध है। उसके अध्ययन से प्रतीत होता है कि इससे भी प्राचीन व्याख्या ग्रन्थ थे। इस शङ्करभाष्य की आनन्दज्ञान ने 'भगवद्भाष्यविवरण' नाम की टीका लिखी तथा श्री रामानन्द ने 'भगवद् गीता व्याख्या' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसके बाद इस भाष्य पर 'गीताशय' नामक ग्रन्थ लिखा गया। यामुनाचार्य नामक दो व्यक्तियों ने पृथक्-पृथक् एक ने गद्य पर तथा दूसरे ने पद्य में भाष्य लिखा है। रामानुज के महान् गुरु श्रीयामुन ने 'गीतार्थ संग्रह' ग्रन्थ में गीता की विषयवस्तु का सार प्रकट किया जिस पर निगमान्त महादेशिक ने 'गीतार्थ संग्रह रक्षा' ग्रन्थ लिखा। जिस पर वरवा मुनि ने 'गीतार्थसंग्रहदीपिका' व्याख्या की। विख्यात वैष्णव आचार्य श्री रामानुज ने गीता पर अपना भाष्य लिखा, जिस पर वेदान्ताचार्य वेंकटनाथ ने 'तात्पर्य चन्द्रिका' नामक उपभाष्य लिखा। मध्वाचार्य या आनन्दतीर्थ ने गीता पर गीता भाष्य लिखा जिस पर जयतीर्थ ने 'प्रमेय दीपिका' में टीका की। उन्होंने एक

'भगवद्गीता तात्पर्य निर्णय' नामक निबन्ध लिखा। कृष्ण भट्ट ने 'गीता टीका' लिखी। इसके पश्चात् राघवेन्द्र स्वामी ने 'गीता विवृति', 'गीतार्थ संग्रह' तथा 'गीतार्थ विवरण' केशव भट्ट ने 'गीतातत्त्व प्रकाशिका', आञ्जनेय ने 'हनुमद्भाष्य' (पैशाच भाष्य), कल्याण भट्ट ने 'रसिकरञ्जिनी', जगद्धर ने 'भगवद्गीता प्रदीप', जयराम ने 'गीतासारार्थसंग्रह', बलदेव विद्याभूषण ने 'गीताभूषण भाष्य', मधुसूदन सरस्वती ने 'गूढार्थदीपिका', ब्रह्मानन्दगिरि ने 'भगवद्गीता प्रकाश', दत्तात्रेय ने 'प्रबोधचन्द्रिका', रामकृष्ण, मुकुन्ददास, रामनारायण विश्वेश्वर तथा श्रीधर स्वामी ने 'सुबोधिनी टीकाएँ' लिखी हैं।

वल्लभ मत से 'तत्त्वदीपिका' एवं 'अमृततरङ्गिणी' लिखी गई हैं। नीलकण्ठ चतुर्धुर 'भावप्रदीप', बच्चा झा ने 'गूढार्थदीपिकातत्त्वालोक', धनपति ने 'भाष्योत्कर्ष दीपिका', अभिनवगुप्त ने 'गीतार्थ संग्रह', सदानन्द व्यास ने 'भावप्रकाश', सूर्यपण्डित ने 'परमार्थप्रपा', राजानक और रामकण्ठ ने 'सर्वतोभद्र', शङ्करानन्द ने 'शङ्करानन्दी', ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' आदि टीकाओं का प्रणयन किया। महाभारत के अनन्त भट्ट, अर्जुन मिश्र, आनन्द जगदीश चक्रवर्ती, देवबोध, नीलकण्ठ, महानन्दपूर्ण, यज्ञनारायण, रत्नगर्भ, विमलबोध आदि तीस से अधिक टीकाकारों ने गीता की व्याख्या की। अत: सभी गीता साहित्य पर ये तीस टीकाएँ उपलब्ध हैं। आधुनिक युग में बालगङ्गाधर तिलक, श्री अरविन्द, पं. मधुसूदन ओझा, मोतीलाल शास्त्री, महात्मा गाँधी, राधाकृष्णन्, विनोबा भावे, हनुमान प्रसाद पोद्दार, जयदयाल गोयनका, स्वामी रामसुखदास आदि दार्शनिकों तथा सन्तों ने गीता की विवेचनाएँ की हैं।

गीता की संस्कृत टीकाओं को मुख्यत: वेदान्त दर्शन की दृष्टि से अग्रलिखित छ: भागों में विवेचित किया जा सकता है।

गीता की संस्कृत टीकाओं को दार्शनिक दृष्टि से निम्नलिखित छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. **श्री शङ्कराचार्य का अद्वैतपरक भाष्य—**आचार्य शङ्कर के अतिरिक्त अन्य किसी की वास्तविक सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। इसमें सम्पूर्ण प्रपञ्च को दो प्रधान भागों में विभाजित किया है—द्रष्टा और दृश्य। एक वह नित्य और चेतन तत्त्व है जो सम्पूर्ण प्रतीतियों का अनुभव करता है। दूसरा जो अनुभव का विषय है, इनमें समस्त प्रतीतियों का द्रष्टा आत्मा है तथा विषय अनात्मा है। आत्म सत्, नित्य, निरञ्जन, निश्चल, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, असङ्ग, कूटस्थ एक और सनातन है। स्वप्न में द्रष्टा ही दृश्य को प्रपञ्चित करता है। स्वप्न (दृश्य) वस्तुत: द्रष्टा से भिन्न नहीं है, केवल अविद्यावशात् भासित होता है। विभिन्न रूपों में दीखने वाला जगत् केवल शुद्ध ब्रह्म ही है, वही आत्मा है। अविद्या के अभाव होने से जीव जीवभाव से मुक्त होकर शरीर में दूसरों की दृष्टि से बने रहने पर भी जीवन्मुक्त हो जाता है। चित्त शुद्धि के पश्चात् कर्मसंन्यासपूर्वक आत्मतत्त्व के सम्यक् ज्ञान से जीवन्मुक्ति या मोक्ष प्राप्त होता है।

2. **श्री रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतपरक भाष्य—**इनका मत भी विशिष्ट अद्वैत की व्याख्या करता है। ब्रह्म एक (अद्वैत) है उसमें तीन वस्तुएँ हैं—(1) अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति, (2) चित् अर्थात् चेतन आत्मा, (3) ईश्वर। स्थूल सूक्ष्म चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म ही ईश्वर है। यह सगुण और सविशेष है। उसकी

शक्ति माया (प्रकृति) है। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता, नियन्ता और सर्वान्तर्यामी तथा सम्पूर्ण गणों का धाम है। जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं। जगत् जड़ है, ब्रह्म ही इसका उपादान तथा निमित्त कारण है। वे ही जगत् रूप में परिणत हुए हैं। फिर भी वे विकार रहित हैं। जीव चेतन और अणु है, स्वगत भेद है। ब्रह्म पूर्ण, ईश्वर तथा कारण है, परमधाम वैकुण्ठ में नारायण की सेवा प्राप्त करना पुरुषार्थ है। पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अप्राकृत शरीर से नारायण का सान्निध्य ही मुक्ति है। मुक्ति ज्ञान से नहीं, अपितु भक्ति से प्राप्त होती है। भक्ति से प्रसन्न होकर जब भगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं, तभी मुक्ति होती है। भक्ति का सर्वोत्तम स्वरूप प्रपत्ति या आत्मसमर्पण है।

3. श्री माध्वाचार्य का द्वैतपरक भाष्य—दो तत्त्व हैं—जगत् और भगवान् विष्णु। विष्णु सर्वोच्च तत्त्व है। वे सगुण, सविशेष, स्रष्टा, पालक, संहारक है। जीव और ईश्वर दोनों सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। ईश्वर सर्वज्ञ, दिव्य गुणों का आश्रय, असीम, अनन्त और स्वतन्त्र है। जीव अणु, भगवद्दास, अनादिकाल से माया मोहित, बद्ध तथा अस्वतन्त्र है। जगत् सत् जड़ और अस्वतन्त्र है। भगवान् इसके नियामक हैं, जगत्-सत्य है। भेद वास्तविक है। पाञ्च भेद हैं—1. जीव ईश्वर का भेद, 2. जीव जड़ का भेद, 3. ईश्वर जड़ का भेद, 4. जीवों का परस्पर भेद, 5. जड़ों का परस्पर भेद। ये सभी भेद वास्तविक हैं। जीवन्मुक्ति सम्भव नहीं है। ईश्वर के अनन्त, असीम, सामर्थ्य, शक्ति तथा गुणों का बोध होने पर दिव्य लोक और स्वरूप की प्राप्ति होती है। यही मुक्ति है। मुक्त जीव ईश्वर का नित्य सेवक होता है। भक्ति ही मुक्ति का प्रधान साधन है। सभी विहित सांसारिक कर्मों को भगवदर्पण करना ही भक्ति है।

4. श्री निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवादपरक भाष्य—इस भाष्य में द्वैत और अद्वैत दोनों को मिलाकर सिद्धान्त निश्चित किए गए हैं। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् निर्विकार और निर्गुणी है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का सर्जन, पालन तथा संहार इसी से होता है। यही निमित्तोपादानकारण है। इसकी चार अवस्था हैं—1. मूल अवस्था है जिसमें अव्यक्त, निर्विकार देशकाल से अनवच्छिन्न रूप रहता है। 2. जगदीश्वर अवस्था है। इसमें ईश्वर के साथ सम्पूर्ण जगत् का भाव है। 3. जीवावस्था है जिसमें विषयों की व्यष्टिगत अनुभूति होती है। 4. जगदावस्था है जिसमें ब्रह्म विश्व के रूप में व्यक्त होता है। ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की कोई सत्ता नहीं है। ब्रह्म सब कुछ है। जीव उसका अंश है। जगत् उसका परिणाम है। भगवान् वासुदेव ही ब्रह्म हैं, उनकी प्रसन्नता और उनके दर्शन होना ही परमानन्द प्राप्ति या मुक्ति है। भक्ति ही मुक्ति का प्रधान साधन है। भगवन्नामों तथा गुणों का चिन्तन, स्वरूप का ध्यान तथा युगल मूर्ति की उपासना करना भक्ति है।

5. श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतपरक भाष्य—ब्रह्म सर्वशक्तिवान्, सर्वज्ञ सच्चिदानन्दस्वरूप तथा परमशुद्ध है। उसमें माया नहीं है। वे निर्गुण, गुणातीत, अनन्तशक्ति तथा अचिन्त्य है। अत: वे सब कुछ बन सकते हैं। उनमें विरुद्ध धर्मों तथा वाक्यों का युगपत् समावेश है। गोलोकाधिपति कृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे जीवों के सत्य हैं। जीव ब्रह्म का अंश, अणु और शुद्ध है। वे लीला से जगत् रूप में परिणत होते हैं। जगत् उनका अविकृत परिणाम है। भगवान् कृष्ण की प्राप्ति ही मुक्ति है। शुद्ध जीव-जगत् को कृष्णमय देखकर श्रीकृष्ण के प्रेम में पत्नीवत् स्वस्वामी कृष्ण की सेवा करके परमानन्द में निमग्न रहता है। भगवत् कृपा से प्राप्त भक्ति ही

मुक्ति का साधन है। भगवद् अनुग्रह ही पुष्टि है, इससे पुष्टिभक्ति का उदय होता है जो मर्यादा भक्ति से विलक्षण है। भगवान् की सर्वात्मना सेवा ही भक्ति है।

6. श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्यभेदाभेदवादपरक भाष्य—ब्रह्म निर्गुण है अर्थात् अप्राकृत गुणों से सम्पन्न है। वह स्वतन्त्र, सर्वज्ञ, मुक्तिदाता ओर विज्ञानस्वरूप है। जीव, अणु और चेतन है। ईश्वर से विमुखता के कारण बन्धनग्रस्त होता है। ईश्वर के सम्मुख होने पर बन्धन कट जाते हैं। चार पदार्थ नित्य हैं—1. ईश्वर, 2. जीव, 3. प्रकृति, 4. काल। जीव, प्रकृति और काल ईश्वराधीन हैं। जीव और ब्रह्म गुण तथा गुणीभाव से भिन्न तथा अभिन्न दोनों हैं। जगत् का निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है। वह अपनी अचिन्त्य शक्ति के कारण सत् जगत् में परिणत होता है, परन्तु जगत् अनित्य है। भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करना ही मुक्ति है। भगवद्धाम को प्राप्त कर जीव का पुनरावगमन नहीं होता है। भक्ति ही प्रधान साधन है। ज्ञान और वैराग्य इसके सहकारी साधन हैं। भगवत्प्राप्ति, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से होती है।

गीता के संस्कृत भाष्य और टीकाओं में इन्हीं छह मतों में से किसी मत का आश्रय लेकर उसके समर्थन में लिखे गए हैं। इनकी सार्थकता के विषय में श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार का कथन द्रष्टव्य है—ये छहों मत ऐसे महान् पुरुषों द्वारा प्रवर्तित है कि उनमें से किसी को भी भ्रान्त नहीं कहा जा सकता है। सभी भगवत्तत्त्व के ज्ञाता महान् पुरुष माने जाते हैं। अतएव इनमें दीखने वाले मतभेद को भगवद्वाणी का चमत्कार मानकर सभी को शुद्ध हृदय से इन्हें नमस्कार करना चाहिए और अपने-अपने अधिकार के अनुसार यथारुचि अपने लाभ की बात सभी से लेनी चाहिए (गीताचिन्तन, पृ. 474)। अत: गीता पर लिखी गई सभी व्याख्याएँ एक लक्ष्य पर जाने वाली विभिन्न सरणियाँ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

गीता साहित्य की मुख्य विशेषता यह है कि यह उच्च कोटि का दार्शनिक ग्रन्थ होने पर भी अन्य वेद उपनिषदों के समान शान्त तथा एकान्त अरण्य में तत्त्व जिज्ञासु गुरु तथा शिष्य के बीच में विवेचित न होकर युद्ध जैसे अशान्त क्षेत्र में एक योद्धा को दूसरे गुरु योद्धा ने व्यावहारिक समस्या के समाधानार्थ प्रस्तुत किया है। इस उपदेश का व्यावहारिक जीवन से अटूट सम्बन्ध है। गीता उठना, बैठना, खाना, पीना, कृषि, व्यापार, युद्ध तथा विषयभोग आदि सांसारिक कर्मों को करने की अनूठी विधि प्रस्तुत करती है, जिससे मानव मात्र जीवन के समस्त कार्यों को करता हुआ भगवान् या मोक्ष को सरलता से अधिगत कर लेता है। स्वयं के उद्धार के साथ सम्पूर्ण लोक (समाज, राष्ट्र एवं मान जाति) को उन्नत, समृद्ध तथा दिव्य बनाने में सहयोग दे सकता है। वस्तुत: गीता साहित्य लोक तथा परलोक में, व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में दुर्लभ सहयोग अथवा सामञ्जस्य या समन्वय स्थापित करती है।

विभागाध्यक्ष,
दर्शन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर।

मानव शरीर में ब्रह्माण्ड शक्ति कुण्डलिनी का जागरण

आचार्य नटवरलाल जोशी

गिरामाहुर्देवी द्रुहिणगृहिणीमागमविधे:
हरे: पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि।। — *सौन्दर्यलहरी, 98*

ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप है—मानव शरीर। परमपिता अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक परमेश्वर की अत्यन्त अद्‌भुत दुर्विज्ञेय, अनन्तानन्त रहस्यों से भरी यह मानव काया अरबों-खरबों जीवन कोशिकाओं की बस्ती है। एक-एक में अलग-अलग जिन्स अपनी अलग प्रोटो टाइप—जैसे समस्त ब्रह्माण्ड में अरबों-खरबों प्राणी रहते हैं तद्‌वत् प्रत्येक मनुष्य शरीर में भी। संभोग में पुरुष वीर्य में विराजमान इनमें से एक नारी डिम्ब में प्रविष्ट होकर भ्रूण परिपक्व होकर शिशु के रूप में संसार में अपनी जीवन लीला प्रारम्भ करता है, उसका अलग व्यक्तित्व होता है जीन्स के रूप में अपने पूर्वजों की विशिष्टता से संयुक्त। हर एक में अग्नि जैवविद्युत होती है—इसे ही प्राण कहते हैं। शरीर की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों में यह अपने ढंग से कार्य करता है। जैसे बीज में वृक्ष की सम्पूर्ण सत्ता रहती है, उसी प्रकार मानव शरीर में ब्रह्माण्ड तत्त्व विराजमान है।

शरीर के दो रूप हैं—एक स्थूल जो दिखाई देता है, एक सूक्ष्म जो अदृश्य है। इसमें स्थित है—षट् चक्र (1) मूलाधार, (2) स्वधिष्ठान, (3) मणिपूर, (4) अनाहत (5) विशुद्धि, एवं (6) आज्ञा। इसके आगे हैं—सहस्रार। इन चक्रों का वेधन कर सहस्रार में जिसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहा जाता है स्थित ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है।

मूलाधार में स्वयम्भू लिंग को $3\frac{1}{2}$ फेरे से आलिंगित कुण्डलिनी मेरुदण्ड के मार्ग से सहस्रार तक की यात्रा करती है। इस सूक्ष्म ब्रह्म शरीर में पदार्थ तत्त्व के सात भाग हैं, जिन्हें प्रकृति के सात शरीर कहा गया है—(1) दैवीय शरीर, (2) सृष्टि के प्रथम जीव से सम्बद्ध शरीर, (3) परमाणु—एटम शरीर, (4) आत्मिक शरीर, (5) मानसिक शरीर, (6) सूक्ष्म शरीर, (7) भौतिक शरीर। ब्रह्म शरीर की भाँति मनुष्य के

सात शरीर भी हैं। ये (1) अस्थि शरीर, (2) मांस शरीर, (3) नाड़ी शरीर, (4) संचरण शरीर, (5) लक्षिका शरीर, (6) नलिकाकार शरीर, एवं (7) चर्म शरीर हैं।

उपर्युक्त षट्चक्र मानव शरीर के छह विद्युत गृह हैं। विश्व में व्याप्त शक्तियों को आकर्षित कर स्वयं धारण करने एवं विश्व में प्रसारित करने की सामर्थ्य है इनमें। सहस्रार चक्र को ही मानव मस्तिष्क में स्थित सहस्रदल कमल कहते हैं। इनकी साधना से मानव नर से नारायण बन सकता है। मानव शरीर भी एक सौर मण्डल हैं। उपर्युक्त सात कलेवर इसके सात ग्रह हैं—आत्मा एवं परमात्मा मिलकर नो ग्रहों वाला है यह सौर मण्डल। पृथ्वी के सौर मण्डल की भाँति जिसमें एक केन्द्रीय सूर्य है और एक पृथ्वी तथा अन्य सात ग्रह—शुक्र, शनि, बृहस्पति, बुध, मंगल, चन्द्रमा एवं अरुण-वरुण।

इसी मानव काया में सात लोक, सात ऋषि, सप्त नगरी, सप्त रंग, सप्त देवी, सूर्य किरणों के सप्त रंग, सूर्य के सप्त अश्व, सप्त लोक, सप्त छन्द समाहित हैं, ऐसा विद्वानों का मानना है।

मानव के सात शरीर—स्थूल, सूक्ष्म कारण, मानस, आत्मिक, देव एवं ब्रह्म शरीर कहे गये हैं।

स्थूल शरीर प्रत्यक्ष है। सूक्ष्म शरीर को ही भाव शरीर कहा है—अपना-पराया, मान-अपमान, राग-द्वेष, सुख-दु:ख का बोध भाव शरीर से होता है।

विचार, तर्क एवं बुद्धि का सम्बन्ध कारण शरीर से, मानस शरीर का कलात्मक रसानुभूति से है। महत्त्वाकांक्षा भी मानस शरीर में जगती है। मनस्वी भी इसी तत्त्व के प्रबल होने से होता है मानव।

आत्मिक शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियाँ निवास करती हैं। सिद्धियाँ चमत्कार एवं बृद्धिगत संकल्प शक्ति का क्षेत्र है यह। तपस्वी-योगी-ऋषि-सन्त-महात्मा देव शरीर के स्तर पर बढ़ने से होते हैं। इसी का फल है—स्वर्ग और मुक्ति। ब्रह्म शरीर अवतार स्तर पर पहुँची आत्माओं को कहा गया है।

संक्षेप में, सम्पूर्ण देव, देवलोक, ऋषि-सिद्ध सभी तीर्थ सभी कुछ जो श्रेष्ठ मनुष्य काया में है। आवश्यकता है साधना की तपश्चर्या की, संयमित जीवन की।

कुण्डलिनी जागरण का प्रयोजन भी अपने में जो महानता है—उसे जाग्रत करने की विकसित करने की।

इस शरीर में ही सुमेरु है—सप्तदीप हैं, गङ्गादि सभी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, कैलाशादि पर्वत हैं, वाराणसी आदि सप्त नगरियां हैं, कश्यपादि सप्तर्षि हैं, वशिष्ठादि ऋषि मुनि—नवग्रह, सभी देवपीठ, सभी देवता निवास करते हैं। सप्त समुद्र भी इसी में हैं। सभी तिथियाँ नक्षत्र, वार-योग, करण मानव शरीर में हैं।

ब्रह्मा हृदय में है, कण्ठ में विष्णु हैं, तालु में रुद्र एवं ललाट में महेश्वर हैं। इड़ा में यमुना, पिङ्गला में सरस्वती, सुषुम्ना में गङ्गा है। यही योगियों की त्रिवेणी है।

शिवसंहिता में कहा गया है—इड़ा वरणा नदी है, पिङ्गला असी, दोनों का संयोग वाराणसी है। इसीमें विश्वनाथ महादेव रहते हैं।

इड़ा आज्ञा चक्र के दाहिने भाग में स्थित नाड़ी है।

ब्रह्मा कारण शरीर के, विष्णु सूक्ष्म शरीर के एवं शिव स्थूल शरीर के अधिपति हैं। ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि एवं रुद्र ग्रन्थि कुण्डली जागरण से खुल जाने पर—समस्त अभाव, शोक सन्ताप एवं भवबन्धन से मानव मुक्ति पा जाता है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी सभी देवताओं का निवास मानव शरीर में है। तपस्या से योग साधना से इन्हें जाग्रत करने की आवश्यकता है।

जीव अपनी संकल्प शक्ति से देवता, तपस्वी बन सकता है क्योंकि संकल्प की शक्ति का कोई ओर-छोर नहीं। गायत्री साधना को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक विस्तृत षट्चक्र के जागरण का साधन कहा है।

सप्तर्षि ही सात प्राण कहे गये हैं। दो काल, दो नेत्र, दो नासिका छिद्र एवं वाणी—इन्हें ही सप्तर्षि कहा है जो इस मानव काया की रक्षा करते हैं।

सप्तऋषय:, प्रतिहित, शरीरे सप्त रक्षन्ति सर्वम् अप्रमादम्। सात लोक, सात चक्रों में ही हैं, मूलाधार में भूलोक, स्वाधिष्ठान में भुव: लोक, नाभिस्थान में स्व:लोक, हृदय में मह:लोक, कण्ठ में जनलोक, ललाट में तपलोक एवं ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार में सत्य लोक है। मनीषियों ने जाग्रत एवं प्रखर प्राणसत्ता को ही ऋषि कहा है। सृष्टि के आरम्भ में जीवसत्ता ऋषि प्राण के रूप में जीवात्मा थी—यही देवात्मा एवं परमात्मा रूप में साधना के बल पर परिणित होती है।

सृष्टि के पूर्व में केवल असत् था। असत् क्या था इस जिज्ञासा के उत्तर में कहा गया—वे ऋषि थे। ऋषि क्या थे – तो समाधान किया गया प्राण ही ऋषि थे।

वस्तुत: सप्तचक्र ही सप्त प्राणकेन्द्र हैं, ये ही सप्तयज्ञ हैं—सप्त समिधा है, सप्तलोकादि हैं, इस प्रकार ये चक्र कुण्डलिनी, विश्वव्यापिनी विद्युत् धारायें हैं जो समस्त ब्रह्माण्ड की शक्तियों को चेतना से जोड़ती है। कुण्डलिनी दूसरे शब्दों में सप्तचक्रों को जाग्रत करने के बाद संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं, निरन्तर उच्चसाधना, जपाराधना के बिना पञ्चकोशों के (अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) निरावरण किये बिना यह सब संभव नहीं।

वास्तव में प्राण चेतना शक्ति है—जीवन्त विद्युत्। प्राणप्रतिभा—शरीर, मस्तिष्क परिवार वैभव की तुलना में भारी हैं। अत्युच्च संकल्प एवं आदर्शों की भित्ति पर ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। प्राणायाम-प्राणाकर्षण जैसे उपचार भी इसके साधन हैं। परन्तु कुण्डलिनी जागरण से इनकी समानता नहीं। प्राण की

चैतन्य विद्युत् समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। प्राण, उदान, अपान, व्यान एवं समान—ये पाँच प्राण मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में कहे गये हैं। देवदत्त, कृकल, कूर्म, नाम एवं धनञ्जय इनके सहायक हैं। पाँच प्राण भी पाँच देव बताये गये हैं। ये पाँच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, तेज वायु एवं आकाश के अधिपति क्रमश: शिव, गणेश, महेश्वरी, सूर्य एवं विष्णु हैं। कुण्डलिनी जागरण से बल, धन, ज्ञान, विज्ञान एवं कौशल इन पाँच वैभवों को प्राप्त करना सहज हैं। पाँच कोश कुण्डलिनी जागरण से ज्योतिर्मय हो जाते हैं। वर्चस्, ओजस्, तेजस्, ब्रह्मचर्य वर्चस् एवं मनोवर्चस् की सिद्धि भी साधक की इससे कही गई है।

मानव मस्तिष्क की संरचना को भौतिशास्त्रियों ने अत्यन्त जटिल कहा है। मस्तिष्क का एक-एक न्यूट्रान साठ हजार सिनेप्सों से जुड़ा है। मस्तिष्क की शक्ति से न्यूट्रान एक-दूसरे से तीन सौ साठ मील प्रतिघण्टा से मिलते हैं। फिर अपने स्थान पर आ जाते हैं। मानव मस्तिष्क में एक खरब सूचनायें संग्रहीत करने की शक्ति है। मस्तिष्क दस अरब न्यूट्रान्स एवं दस खरब विनेप्स समूहों से बना हैं—विधाता की विलक्षण कृति। कुण्डलिनी जागरण से इस मस्तिष्क की शक्ति को साधक किस रूप में सहज ही प्राप्त कर सकता है—यह केवल अनुमान गम्य है।

संसार के महापुरुषों में जिनकी गणना है वे जाग्रत कुण्डलिनी के ही चमत्कार हैं। जाग्रत कुण्डलिनी वाले विलक्षण पुरुषों को पूर्वजन्म की स्मृति, भविष्यज्ञान, दूर घटित घटनाओं की जानकारी, विचार संप्रेषण, दूसरों के विचार जान लेना, उनकी अतीन्द्रिय क्षमता के कारण ही संभव है, जो कुण्डलिनी जागरण से सहज संभव है।

साहित्य परिषद्
लक्ष्मणगढ़
जिला-सीकर (राजस्थान)

शिवशक्तिरूपा श्रीविद्या

डॉ. आशीष कुमार जोशी

एक सती भगवती परमार्थता अपि
संहस्यसे बहुविधं ननु नर्तकीव।

कश्मीर शैव दर्शन के आचार्य अभिनव गुप्त ने तन्त्र विश्वकोष *तन्त्रालोक* के प्रारम्भ में सर्वप्रथम पराम्बा के स्वरूप और महत्ता पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

नौमि चित्प्रतिमां देवी परां भैरवयोगिनीम्।
मातृमानप्रमेयांशशूलाम्बुजकृतास्पदाम्।।

अर्थात् मैं उस पराम्बा देवी को प्रणाम करता हूँ जो चित्प्रकाश पूर्ण परा रूप में चारों ओर चमकती रहती है, भैरवरूप त्रिशूल के तीन अरों रूपी कमलों पर विराजमान है।

आचार्य ने इसी पराम्बा में शिव से क्रम रूप काल का स्वरूप बनी हुई क्रिया शक्ति माना है। इसी पराम्बा श्रीविद्या को अज्ञान हटाने वाली, आनन्द की वर्षा करने वाली, सब ओर से परिपूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी कहा है। इतना ही नहीं यही त्रिपुर सुन्दरी—

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठविग्रहाम्।। — *नित्याषोडशिकार्णव, 1*

अर्थात् यह देवी प्रत्येक जीव के मन में समस्त ग्रहमण्डल में, सत्ताईस नक्षत्रों में चौंसठ योगिनियों ने तथा मेष, वृष आदि बारह राशियों में स्थित है। ऐसी मन्त्रस्वरूपा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ जो मातृका चक्र की आधार है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शैवदर्शन में मातृका चक्र और मालिनी चक्र पर पूरा प्रकाश डाला गया है। मालिनी – यह तत्त्वों तथा अक्षरों की वह माला है जो न केवल शिव से शक्ति तक तथा शिव से पृथ्वी तक ही नहीं अपितु अक्षरों की यह माला इस प्रकार पिरोई गई है जहाँ शिव शक्ति और नर सर्वत्र है। अर्थात् एक तत्त्व सब तत्त्वों में तथा अन्य सारे तत्त्व एक तत्त्व में हैं। मालिनी शैव दर्शन में एक ऐसा उपाय है जो सर्वग्राह्य

होते हुए भी रहस्यात्मक शक्ति है। यह पराम्बा का एक ऐसा रूप है जिस में सर्वत्र उनका आभास है। इस रूप में जगत् का आभास केवल जगत् में ही नहीं वरन् उसके अभाव में भी है अर्थात् अभाव में जगत् का भाव है और भाव में भी अभाव है। अत: शिव की उपलब्धि शिवावस्था में ही नहीं अवस्था के अभाव में भी है। मालिनी 'नादिफान्ता' है। अर्थात् यह अक्षरों की वह माला है जो 'अ' की बजाय 'न' से आरम्भ होती है और 'क्ष' की बजाय 'फ' पर समाप्त होती है। 'ह्री' यह बीजाक्षर जो कि श्रीविद्या का विशेष बीजाक्षर तीनों मन्त्रकूटों में व्याप्त है इस मालिनी में सर्वत्र व्याप्त है। अत: यह मालिनी क्रम इसी श्रीविद्या की विशेषता है जो रहस्यात्मक है।

श्रीविद्या को पञ्चदशाक्षरी विद्या भी कहते हैं क्योंकि इसका मन्त्र पन्द्रह बीजाक्षरों का स्वरूप है। इसमें तीनकूट हैं—1. वाग्भव कूट, 2. कामराज कूट या मध्य कूट, 3. शक्तिकूट। ये तीन कूट इस मन्त्र का मुख मध्यभाग और अधोनाभि प्रदेश क्रमश: कहे गये हैं।

वाग्भवकूट में ये पाँच बीजाक्षर हैं—क, ए, इ, ल, ह्रीं। कामराज कूट में ये छ बीजाक्षर हैं—ह, स, क, ह, ल, ह्रीं। शक्तिकूट में चार बीजाक्षर हैं—स, क, ल, ह्रीं। इन्हीं बीजाक्षरों के आधार पर 'ललिता त्रिशती' है। इस पञ्च दशाक्षरी मन्त्र में 'श्री' वाग्भवकूट के आरम्भ में जो यह षोडशी मन्त्र बनता है, जिसे तुरीय कूट कहते हैं। श्री विद्या को कामसेवित होने से कादिविद्या और अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा से सेवित होने से 'हादि विद्या' कहते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त्य ऋषि को इस श्रीविद्या का उपदेश दिया। ये दोनों पति-पत्नी श्रीविद्या के उपासक व प्रचारक थे। श्रीविद्या के मन्त्र में 'क' बीजाक्षर तीन बार तथा 'ह' बीजाक्षर दो बार आया है। यहाँ 'क' और 'ह' बीजाक्षर शिव से सम्बन्धित है। इन दो बीजाक्षरों के अतिरिक्त शेष बीजाक्षर शक्ति सम्बन्धित है। अर्थात् ए, इ, ल, स, ल, स, ल—ये बीजाक्षर शक्ति अक्षर हैं। 'ह्री' बीजाक्षर उभयात्मक है। अर्थात् शिवशक्ति सामरस्यात्मक बीजाक्षर ह्रीं शिवशक्ति संघट्ट या यामलावस्था का प्रतीक है।

त्रिपुरसुन्दरी रूपा इस श्रीविद्या के तीन सम्प्रदाय हैं—1. हयग्रीव सम्प्रदाय, 2. आनन्द भैरव सम्प्रदाय और 3. दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय।

हयग्रीवधारी विष्णु ने हयग्रीव नामक राक्षस पर आक्रमण करके उसे मार डाला तो देवता चिन्तामुक्त हुए और जगत् की रक्षा हुई। देवी त्रिपुरसुन्दरी पराम्बा के पास जाकर हयग्रीवधारी विष्णु ने उनसे श्रीविद्यामन्त्र के रहस्यों को समझा और इस तरह हयग्रीव सम्प्रदाय के प्रथम गुरु बने।

दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय भी इससे जुड़ा है। श्रीललिता के हजार नाम इसी हयसपर्या के प्रतीक है। इस सम्प्रदाय में विस्तृत बाह्यपूजा पद्धति के साथ अन्तर्याग पद्धति का भी वर्णन है।

आनन्देश्वर भैरव सम्प्रदाय के अनुयायी उत्तर भारत में भी विद्यमान हैं। शिवरात्रि के विशेष पर्व पर श्रीविद्या की अर्चना विचित्र प्रकार से होती है। एक पात्र में 'पानक' जो विशेष द्रव्यों का रस होता है रखा जाता है। इसे सुरा का प्रतीक माना जाता है। उसकी पूजा 'सहरक्षमजवय ॐ सुरादेव्यै वौषट्' मन्त्र से श्रीविद्या की तथा आनन्देश्वर भैरव को शिव मानकर तांत्रिक मन्त्रों से पूजा की जाती है। ध्यान देने योग्य है कि मन्त्र का 'स' बीजाक्षर शक्ति तथा 'ह' बीजाक्षर शिव का प्रतीक है। श्रीविद्या की इस पूजा पद्धति को 'भैरव-याग पद्धति' के नाम से भी जाना जाता है।

श्रीविद्या के धात्वर्थ को निम्न श्लोक में स्पष्ट किया है—

विगलति भवदौर्गत्यं मोक्षश्री श्रयति हृत्कचं कचति।
प्रसरति परमानन्दं यत्र तदीशार्चनं जयति।।

यहाँ 'ईशा' श्रीविद्या के लिए प्रयुक्त हुआ है। ईश्वरस्य इयं ईशा कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्था।

शिव का शिवत्व पराम्बा से ही है। यदि शिव में से 'इ' स्वर को हटा दे तो यह 'शव' बन जायेगा। 'इ' स्वर सृजनात्मक सृष्टि की इच्छा का द्योतक है। श्री शंकराचार्य रचित *सौन्दर्यलहरी* के प्रथम श्लोक के अनुसार—शक्ति के बिना शिव का हिलना डुलना असंभव है क्योंकि स्पन्दन शक्ति में है, शिव में नहीं क्योंकि अहं भाव है और शक्ति इदंभाव है। अहं और इदं दोनों के प्रभाव से सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है।

कश्मीर शैवदर्शन में त्रिपुरसुन्दरी के दो नामों का उल्लेख है—समस्त प्राणी जीवा और पञ्चाशद् वर्णविग्रहा। कहते हैं कि माता के उदर में गर्भाधान के समय कुछ काल तक एक मांस पिण्ड ही होता है फिर 'प्राक् संवित् प्राणी' कथन के आधार पर सबसे पहले प्राण रूप में पराशक्ति संवित् दिखती है, जिससे धड़कन का आभास मिलता है। यह संवित् ही पराम्बा शक्ति है जिसकी पहचान धड़कन से ही तो है। अत: यह समस्त प्राणि जीवा है। दूसरा नाम पञ्चाशत् वर्ण विग्रहा अर्थात् पचास वर्ण रूप शरीर धारिणी है। ये पचास वर्ण अ से क्ष तक है। यहाँ उल्लेखनीय है कि अ से अ: तक स्वर है जो शिव सम्बन्धी है। इन स्वरों का स्थान हमारे शरीर में विशुद्धि चक्र है जिसे शिवस्थान कहा गया है। क से संयुक्ताक्षर पर्यन्त व्यञ्जन समूह जो शक्ति रूप व्यञ्जनों अर्थात् 'योनी' से साकार हुए हैं। तंत्रों में कहा है कि **बीजयोनि समुद्भवा: पंचाशत् वर्णा:।** ये स्वर और व्यञ्जन शिव और शक्ति का सामञ्जस्य है। शैवदर्शन में 'वर्णविग्रहा' का जो उल्लेख मिलता है वह पराम्बा के उस तत्त्व की ओर संकेत करता है जो मानव देहस्थित षट् चक्रों से सम्बद्ध है अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, चक्र और आज्ञा चक्र से ओत-प्रोत स्वर व्यञ्जन संघात है।

त्रिकदर्शन या शैव दर्शन का जो शिव या शक्ति तत्त्व है, वही त्रिपुर सिद्धान्त का कामेश्वर और कामेश्वरी है। इन दोनों का सामञ्जस्य भाव ही त्रिपुरसुन्दरी है।

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचित्
आनन्दमेव कतिचित् कतिचित् च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम:
साक्षादपारकरुणां शिवशक्तिरेव।। — *अम्बास्तव 31.*

सुभगोदय नामक ग्रंथ में सत् चित् आनन्दस्वरूपिणी इस ललिताम्बा को ही षोडशी कला कहते हैं। वेदों में यही पराम्बा वेदमाता गायत्री है, तंत्रों में शक्तिस्वरूपा सृष्टि, स्थिति, संहारिका श्री है। पुराणों में इसे त्रिकरणात्मिका कहा है। उपनिषदों में इसे पराप्रकृति कहा है। कश्मीर शैवदर्शन के अनुसार जब शिव के हृदय में सृजनात्मक इच्छा पैदा होती है तो वह शक्तिरूप में प्रकट होते हैं। शिवरूप में वह प्रकाश स्वरूप है और शक्तिस्वरूप में वह विमर्शरूप है। इस प्रकार श्रीविद्या, ललिताम्बा, त्रिपुरसुन्दरी, महाविद्या विभिन्न नामों से संसार रूपी रंगमंच पर आकर साधक रूपी पात्रों को यथानिर्दिष्ट अभिनय कराकर पुन: अपने स्वरूप में समाविष्ट कर लेती है।

भारतीय विद्याभवन विद्याश्रम,
मालवीय नगर, जयपुर।

कुण्डलिनी की सामान्य साधना एवं विविध उपाय

रामकिशोर पारीक

कुण्डलिनी का नाम सुनते ही जनसामान्य तन्त्र की किसी जटिल साधना की कल्पना करने लगते हैं। जो गुरुगम्य व कठिन सोपानों, मन्त्र सोपानों से गुजरकर अपने नियत क्रम से बढ़ते हुए अपनी नियताप्ति तक पहुँचती है। इसको हस्तगत मानव की महामानव में कल्पना की जाती है। जबकि वास्तव में ऐसा कुछ है न होता है। सामान्यत: शरीर के कुछ अङ्ग प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष तथा कुछ अदृश्य स्थिति में होते हैं। हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक सब प्रत्यक्ष अङ्ग हैं। अप्रत्यक्ष अङ्ग हैं मन, बुद्धि, बुद्धिकार्य आदि। किन्तु अदृश्य जैसे मन व सुषुम्ना (कुण्डलिनी के पथ) का दर्शन व आकलन।

स्पष्टतौर पर वैज्ञानिक भी किसी विशेष नाड़ी का अनुमान लगाते हैं जो मेरुदण्ड के मध्य एक सूक्ष्म तार के रूप में शरीर के इन मेरुदण्डों के मध्य से होकर पहले रज्जु के सामने के भाग से चलकर सिर के मध्य भाग तक चली जाती है। यह 'नाड्य: चतुर्विधा मन्यते' के आधार पर चतुर्थ श्रेणी की एकमात्र नाड़ी है। पहले प्रकार की नाड़िया 'शुद्धरक्तवहा' है जिन्हें धमनियाँ कहते हैं। दूसरी प्रकार की नाड़ियाँ अशुद्ध रक्तवहा है, जिन्हें शिरायें कहते हैं। तीसरी प्रकार की नाड़ियाँ वायुवहा जो तन्त्रिका तन्त्र (Nervous system nerves) कही जाती है। चौथे प्रकार की नाड़ियाँ जिनमें कोई पदार्थ नहीं बहता ये केवल ऊर्जा का वहन करती है। यह केवल एक ही नाड़ी है जिसे सुषुम्ना है (कुण्डलिनी कहा गया है)। इसका आयतन इतना कम होता है कि यह स्थूल आँखों से नहीं, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों से भी दृष्ट नहीं होती। यही सुषुम्ना कुण्डलिनी (ऊर्जा) का वहन करती है। जीव विज्ञान इसे जानता नहीं, किन्तु मानने से इनकार भी नहीं करता। भारतीय पूर्व ऋषियों ने इसे साधना द्वारा जगाने की प्रक्रिया विकसित की। शिव, घेरण्ड, याज्ञवल्क्य, विशेषकर देवीउपासकों ने इसका तन्त्रों में वर्णन किया है। जिस प्रकार मन के लिए कहा गया है—"Man is invisible part of body, which could not seen though eyes, but think in two or more subjects at a time." मन शरीर का ऐसा अदृश्य अङ्ग है जो एक ही समय में दो या दो से अधिक विषयों का चिन्तन कर सकता है।" (*केवल की केवल यात्रा*, पृ. 7) इसी प्रकार यह भी शरीर का अङ्ग तो है किन्तु स्पष्ट दृष्ट न होकर अनुभवगम्य है।

योग की परिभाषा करना कठिन है किन्तु कहा जा सकता है (1) योग ईश्वर प्राप्ति या स्वात्मलाभ का सबसे छोटा रास्ता है; (2) शरीर व मन के शुद्ध होने पर यह लाभ मिल पाता है; (3) एकनिष्ठ होकर इसी लक्ष्य के लिए किये गये सभी कार्य योग में सम्मिलित हैं चाहे व्रत, उपवास, यज्ञ, तप, भजन, नाच, गान, रुदन, हर्षण, पूजा, प्रार्थना या विभिन्न ध्यान साधनाएँ कुछ भी हो सकता है।

किसी भी व्यक्ति में यदि कुछ विशिष्ट दैहिक ज्ञान या विज्ञानमय विशेषताएँ अर्जित होती है तो वे सब इस शक्ति के जागरण के लक्षण प्रकट करते हैं। देखिये *योगसूत्र* के विभूतिपाद में। अत: वायु के स्पर्शमात्र से जागृत् होने वाली इस नाड़ी के जागरण के लिए प्रयास प्राणायाम, ध्यान व विभिन्न मुद्राएँ या सतत स्मरण ही है। भक्तों व विभिन्न सन्तों को इसका जागरण सतत स्मरण से हुआ है। हठयोग के ग्रन्थ इसके बारे में कहते हैं—

दिवा (सूर्यस्वरं) न पूजयेत् लिङ्गं, रात्रौ (चन्द्रस्वरं) नैव पूजयेत्।
अहर्निशं पूजयेत् लिङ्गं, यदा वायु: समानग:।।— *हठप्रदीपिका, 4(42)*

साधक सूर्य व चन्द्र स्वर में साधना न कर दोनों स्वरों के समान चलने पर साधना करे तो वायु का स्पर्श जब सुषुम्ना मुँह पर होता है तो शीघ्र कुण्डलिनी का जागरण होता है। शरीर में हर घण्टे में दूसरा स्वर बदलता है। इस बदलाव के मध्य 2-5 सैकिण्ड के समय को सन्ध्या समय कहा गया है। इस सन्ध्या में किया गया स्मरण व प्राणसाधन कुण्डलिनी को जागृत् करता है। अत: भक्तों ने अहर्निश स्मरण का उपदेश किया है जिससे सन्ध्याकाल (दिन में इस प्रकार 24 बार आता है) कुण्डलिनी के लिए साधन हो जाता है।

अत: सहज स्मरण की आदत डालना साधना का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अत: कहा है—

राम नाम भज बावळा, मोटा मन आकाश।
थिरता आवे जीव को, केवल के पद भाष।। — *केवल की केवल यात्रा।*

मीरा भजी पुकारकरि, मन में भजे रैदास।
कबीरा सुरति आकाश, तीनों में भवपार।। — *केवल की केवल यात्रा।*

हे पगले इन्सान परमात्मा का अहर्निश स्मरण कर चाहे जोर से बोलकर, मन में बोलकर या सूक्ष्म आकाश, जैसा संभव हो स्मरण कर क्योंकि मीरा ने जोर से नाम पुकार कर, रैदास ने मन में स्मरण कर तथा कबीर ने शून्य में परमात्मा का स्मरण कर इस भवसागर के सभी बन्धन काट दिए हैं। अत: शास्त्र के वैखरी आदि सभी साधन कमतर व अधिक महत्त्व वाले न होकर सभी समान फल के देने वाले सिद्ध हुए हैं।

पुनश्च—साधने के लिए चार प्रकार व्यवहार में आते हैं। उस परमात्मा लाभ के लिए व्यक्ति—

(1) **रोकर**—परमात्मा के मिलन के लिए रो-रोकर प्रार्थना करे, जैसे मीरा ने किया;

(2) **हँसकर**—जैसे अन्यान्य ऋषियों ने प्रसन्नतापूर्वक सब कष्ट वहन किए। कष्टों को भी परमात्मा की कृपा माना व परमात्मा से एकाकार हो गये;

(3) **सोकर**—सोते समय जब तक नींद न आवे हाथों को ऊर्ध्व रखकर पैरों के अंगूठे के नाखून मिलाकर परमात्मा का स्मरण करते हुए लेटे। गहरी नींद आने पर स्वत: करवट आ जायेगी। ऐसी दशा में अपना ध्यान भ्रूमध्य में लगाये रखे। गहरी नींद समाप्त होने पर पुन: स्मरण शुरू करें। ऐसा अभ्यास नित्य करने से 6 माह से 6 वर्ष में स्वप्न आना बन्द हो जायेंगे। नींद एक स्मरण साधना हो जायेगा। यह स्मरण दिन में भी होने लगेगा। इस प्रकार उस व्यक्ति की नित्य 24 सन्ध्या होने लगेगी। प्राण मध्यमार्ग का आभारी हो जायेगा तथा नित्य सहज समाधि लगी रहेगी। एकान्त मिलते ही शरीर शून्न होने लगेगा, जो योग का मुख्य उद्देश्य है।

सभी साधनों का एकमात्र उद्देश्य है—मन का इच्छाशून्य अवस्था में पहुँचना। आपका दिमाग 24 घण्टे काम करता है। इसे यदि आप 1 क्षण भी आराम दे दें तो इसकी कार्यक्षमता 10 गुणा बढ़ जाती है।

सोकर उठने पर बिस्तर में बैठकर पहले 5-10 मिनिट परमात्मा का ध्यान करें क्योंकि यह समय मन की एकाग्रता के लिए उत्तम है। शरीर भी अधिक उर्जस्वित होता है। इसी को नानक ने 'अमृतवेला' कहा है।

इसीको मुसलमान धर्म में खयाल (इत्तफाक़) ईसाई इसे प्रार्थना व भारतीय दर्शन व सभी भक्तिमार्ग इसे स्मरण कहते हैं। इसमें निरन्तरता होना ही सफलता का मार्ग है।

(4) **ध्यान**—ध्यान तो आज विभिन्न विधियों से सिखाया जाता है। कोई भी एक तरीका स्वीकार करें, अभ्यास करें व आगे बढ़े। किन्तु मेरे मत से ध्यान करने का विषय नहीं। थोड़ी सी साधना पक्व होने पर स्वत: ध्यान होने लगता है। यही उत्तम विधि है। ध्यान स्वयं होने लगे उससे पूर्व सदा इस भाव से जीना सीखें परमात्मा मेरा है, परमात्मा सदा मेरे साथ है, मैं परमात्मा का हूँ, तो निर्गुण पथ का ध्यान हो जाता है। डरने की जरूरत नहीं है—क्योंकि ईश्वर को अपने साथ लेकर इन्सान पैदा हुआ है फिर उदास क्यों है। तू अकेला न कभी था, न है? तू सदा परमात्मा के साथ है।

जन्मत साथ राम को पायो, तदपि काहे उदासी। — *केवल की केवल यात्रा।*

इस भाव को दृढ़ करों कि धीरे-धीरे सभी इच्छाएँ परमात्मा की प्राप्ति में एकाकार हो जाए।

आते रहे मुरादी, एक बेमुराद मैं हूँ।
सबकी भरी झौली, मेरी मुराद तू है।। — *केवल की केवल यात्रा।*

अर्थात् हे ईश्वर तेरे यहाँ सदा इच्छा से सब लोग आते हैं। एक न माँगने की इच्छा से मैं आता हूँ। अर्थात् मेरी भी माँगने की इच्छा होती है किन्तु मैं चाहकर इसे रोके रहता हूँ। जब मैं देखता हूँ आप सबकी

सब इच्छाएँ पूरी करते हो तो मेरा मानव मन मचल जाता है, वह माँग बैठता है। मैं अपने लिए आपको माँगता हूँ।

योग में विभिन्न पथ कहते हैं—मन वश में करो, इन्द्रियों को वश में करो, प्राणरोध करो या चित्त स्थिर करों। ये चारों तो एक ही लक्ष्य कैवल्य पद प्राप्ति के मित्र हैं।

मनथिरता, इन्द्रियवश, प्राणरोध या चित्त।
चारहु एकहि मानिए, केवल पद के मित्त।। — *कैवल्ययोगस्मृति-1*

लक्ष्य प्राप्ति के लिए लक्ष्य का निर्धारण करे, उसके लिए नियमित अभ्यास करे। नियमित अभ्यास के बाद भी फल इच्छित रूप में प्राप्त न हो तो घबराये नहीं और दृढ़ता से साधन करें। क्योंकि साधन करते हुए प्राप्त कष्ट साधक के लिए निकष हैं—

मन घोडा जीन जप, पाहुड दृढ विश्वास।
अस घोड़ा असवार, पावत आतम सात।।— *केवल की केवल यात्रा।*

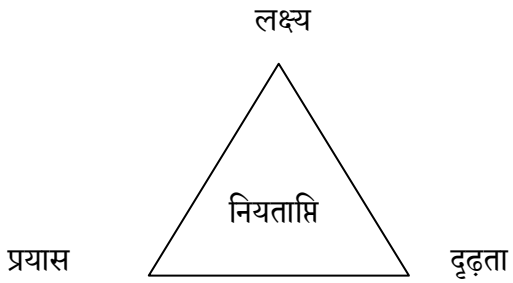

दुःख राम घर पेडिया, सुख राम घर भात।
दोन्यू में एको करे, सांचो साधु जाण।।

दुःख व सुख दोनों अवस्थाओं में सम भाव का आचरण ही साधुता है। यही गीता का सार भी है। इसका झूठा अभ्यास ही शनैःशनैः शाश्वत व्यवहार में बदल कर उसे स्थितप्रज्ञ बना देता है।

इसी प्रकार कुण्डलिनी जागरण की अवस्थाओं में पहला चक्र जब जागृत् होता है तो मूर्छा आना, गुदा क्षेत्र में गर्मी बढ़ना, शरीर का तपना आदि साधन को सहन करना होता है। अतः इनकी चिन्ता न कर आगे बढ़ते रहो। स्मरण को मत तोड़ो।

दूसरे चक्र में काम भाव जागृत् होता है। इसमें चञ्चलता को नियन्त्रित करने के लिए आसन में दृढ़ता से बैठकर बार-बार अधिक मूर्छा का अभ्यास कर 4-6 माह निकाले।

तीसरे चक्र में विभिन्न शास्त्र मस्तिष्क में उतरने व स्फुट होने लगते हैं। अत: साधक उस अवस्था में इनका आनन्द ले। मौन धारण करे। अधिक सुनियोजित कोई ग्रन्थ स्फुट हो तो उसे लिख दे क्योंकि निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, भय इस समय समाप्त प्राय: हो जाते हैं।

चौथे चक्र में साधक अभय वृत्ति वाला हो जाता है। उसे पूर्ण आधार व विश्वास हो जाता है कि ईश्वर उसका है।

पाँचवें चक्र में उसकी वाणी में प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। वह सुव्यवस्थित विचार व भाव प्रस्तुत करने लगता है। वहाँ से वापस प्राण नीचे आने पर वह बेचैनी भी महसूस करने लगता है जो पुन: स्मरण से ठीक हो जाता है।

छठे चक्र में उसे सिद्धों व देवों के दर्शन होने लगते हैं। वह इच्छित दृश्य व विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अपना ध्यान किसी भी लोक-लोकान्तर में स्थिर कर सकता है।

किन्तु इन सब विशेषताओं से निरपेक्ष रहकर वह स्मरण करता रहे तो छठे चक्र से सीधा आगे मूर्धा में जाकर दशम द्वार तोड़कर आगे बढ़ जाता है। बीच मार्ग में आने वाले, यम, स्वर्ग, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक व परमब्रह्म व देवीलोक के दर्शन का लोभ त्याग दे तो सीधा सत्यलोक पहुँच जाता है।

अत: मन्त्र एक ही है सतत स्मरण, परिणाम है पूर्ण नियताप्ति। यदि प्रलोभनों में न फँस कर केवल एक पूर्णता रहे।

कुण्डलिनी-साधना के विविध उपाय

शक्ति का जागरण ही कुण्डलिनी का जागरण है। कुण्डलिनी शरीरस्थ एक अङ्ग की तरह है। अत: इसको जागृत् करने से व्यक्ति में ईश्वरीय गुण पैदा हो जाते हैं। जिस प्रकार विभिन्न अङ्गों के शोधन के अलग-अलग विधान है। इसकी शुद्धि के भी कई प्रकार है।

1. तज्जपस्तदर्थभावनम् — *योगसूत्र* 1.28

जप या स्मरण करना व उसकी भावना से जीना। सभी सन्तों ने भी इसी पर जोर दिया है। यदि व्यक्ति निरन्तर जप करे तो वह अपनी इस सुप्त शक्ति को जागृत कर सकता है। जैसे 'कबीर सुमरण सार।'

2. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य — *योगसूत्र* 1.34

प्राणायाम के अभ्यास से भी इसका जागरण हो जाता है। इसका वर्णन *गीता, योगोपनिषद्, योग चूड़ामणि उपनिषद्, घेरण्ड संहिता, शिव संहिता, हठप्रदीपिका* आदि में भी दिया गया है।

3. यथाभिमतध्यानाद्वा — *योगसूत्र* 1.39

जो आपको प्रिय हो उस परमात्मा के रूप या निर्गुण निराकार ज्योति के ध्यान में भी इसका जागरण संभव है।

4. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध — *योगसूत्र* 1.34

इस मन को अभ्यास व वैराग्य द्वारा वश में किया जा सकता है। मन को वश नहीं किया जाना है उसकी लौकिक गमन की प्रवृत्ति को ईश्वर या सत् प्रवृत्ति में लगाने के अर्थ में सोचना चाहिए। मन को रोका या दमित नहीं किया जाता उसकी दिशा को परिवर्तित किया जाता है। यही इसका वश होना है। मन तो वह बलवान् घोड़ा है जिस पर दृढ़बुद्धि वाला सवार स्थिरतापूर्वक सवारी करे तो आत्मसात् प्राप्त कर सकता है।

5. ऋषिचिन्तनाद् अपि

पूर्व हुए योगियों की भावना करके भी इस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। तद् चिन्तनात् ऋषि दर्शनम्—निरन्तर पूर्व हुए सिद्धों का चिन्तन करने से वे उस साधक को प्रत्यक्ष हो जाते हैं। तब आगे का मार्गदर्शन पाकर वह पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

6. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् — *योगसूत्र* 1.34

पूर्व जन्म में किए हुए योग अभ्यास का जन्म से ही प्रकट हो जाने पर साधक इस पथ की आगे की यात्रा प्रारम्भ कर सकता है। जैसे जनक जन्म से ही समाधि लाभ लेने लगे। सन्त ज्ञानेश्वर बचपन से ही समाधिस्थ रहने लगे।

7. योगशास्त्र में (हठयोग)

(अ) विभिन्न मुद्राओं का अभ्यास कुण्डलिनी के जागरण में सहायक है। किसी भी आसन का 24 मिनिट से अधिक समय परमात्मा के स्मरण व ध्यान के साथ करना ही मुद्रा है।

महामुद्रा, महावेध, शक्तिचालिनी, तडागी, मत्स्यमुद्रा, अश्वनि, शाम्भवी आदि मुद्राओं का वर्णन इस सन्दर्भ में आता है।

तडागी (पश्चिमोत्तान आसन) व मत्स्य मुद्रा इसमें मुख्यत: फलदायी है। इन्हें योग्य गुरु के निर्देशन में स्मरण, ध्यान व प्राणायाम पूर्वक करने का अभ्यास करे।

(ब) प्राणायाम—नाड़ी शोधन, कपालभांति प्राणायाम हर मौसम में किए जा सकते हैं तथा यह कुण्डलिनी को जागृत् कर देते हैं। अन्य प्राणायाम सर्दी व गर्मी की ऋतु देखकर करने का विधान है।

गर्मी के मौसम में शीतली व सीत्कारी प्राणायाम किए जा सकते हैं। सर्दी के मौसम में सूर्यवेधी व उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए भ्रामरी व मूर्छा प्राणायाम का विधान है।

भस्त्रिका प्राणायाम कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के समय प्रारम्भ किया जाता है जिससे दूसरे प्राणायाम ठीक प्रकार अभ्यास किए जा सकें।

केवल कुम्भक स्वत: होने वाला प्राणायाम है जो समयान्तर में स्वयं होने लगता है।

शाम्भवी मुद्रा जब सिद्ध होती है तो स्वत: केवल प्राणायाम होने लगता है।

देही रहे इह देशहि, मन पीतम के साथ।
या को उन्मन कहो, राजयोग पद हाथ।।

— *केवल की केवल यात्रा :* योगस्मृति खण्ड–2

8. तन्त्रों में इसके लिए विभिन्न मन्त्र साधनाओं का विधान है जो गुरु के सान्निध्य में रहकर करने से शीघ्र फलदायी होती है।

यह भ्रम फैला है कि तन्त्र की साधना जटिल व भयावह हो सकती है। ऐसा देवी को अन्य मानकर की गई साधना के परिणाम से ऐसा होता है। जब आप उसे माँ मानकर स्वयं को गोद का बालक मानकर इस भाव को दृढ़ बना लें तो ये साधनाएँ सुगम व शीघ्रफलदायी होती है। ऐसे तीव्र व अप्रतिम सम्बन्ध से साधना करना एक सहज उपासना में बदल जाती है। साधक निर्विघ्न सभी सोपान पार कर लेता है।

9. ईश्वरप्राणिधानाद्वा — *योगसूत्र,* 1.23

परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से जीवन जीने पर भी इस शक्ति का विकास हो जाता है।

औषध व गुरु कृपा से भी कुण्डलिनी जागरण देखी गई है किन्तु इसका स्थायी लाभ नहीं है। जैसे अर्जुन कृष्ण के उपदेश ज्ञानी तो हो गया किन्तु भीलों के युद्ध में सब विद्या भूल गया।

10. गुरुकृपा या शक्तिपात

गुरुकृपा या शक्तिपात से भी योग इस शक्ति का उदय हो जाता है। किन्तु योग के नियमानुसार महत्त्व स्वयं के प्रयास से प्राप्त करना ही उपादेय है। अत: यह शक्ति अधिक समय तक स्थायी नहीं रहती। दूसरे जन्म या जन्मों में उस साधक को स्वयं अभ्यास कर उस स्थिति को पाना ही होगा अन्यथा इसे उसके साधन की सिद्धि को मान्यता सिद्ध समान नहीं देता है। जिस प्रकार मुफ्त में प्राप्त धन का सदुपयोग कठिनाई से लाखों में से कोई बिरला व्यक्ति ही करता है अन्य इसका दुरुपयोग कर शीघ्र पूर्वस्थिति से भी गिरी हुई स्थिति में पहुँच जाते हैं।

गुरु न मीठा देत है, गुरु न मिलावत ईस।
तौं से तौं ही मिलत है, जो मता न करे दसबीस।।

— केवल की केवल यात्रा-3

न तो गुरु मिठाई की तरह परमात्मा को तुम्हारी हथेली में रख सकता है न ही तुम्हें सहज ही उसे तुम्हारे लिए गम्य कर सकता है। आत्मस्वरूप साधक स्वयं से ही रूबरू होता है जब वह 10-20 इच्छाओं को त्याग कर केवल एक परमात्मा साक्षात्कार वाली बुद्धि वाला हो जावे।

अत: साधन के उपाय सर्वत्र फैले हैं कोई एक का दृढ़ आलम्बन कर आगे बढ़ो, सफलता निश्चित मिलती है।

योगाचार्य,
142, शिवनगर, दादी का फाटक,
जयपुर-302040
चलदूरभाष-9414781638

कुण्डलिनी शक्ति का आधार योग वर्तमान भौतिकतावाद की जरूरत

डॉ. माधवी शर्मा

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिप्रभां प्रिये।।

मूलाधार चक्र में विद्युत प्रकाश ही करोड़ों किरणों वाला, करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमाओं के प्रकाश के समान, कमल की दण्डी के समान अविच्छिन्न तीन घेरे डाले हुए मूल विद्या रूपिणी कुण्डलिनी रूप में स्थित है।

कुण्डलिनी एक दिव्य शक्ति है जो सर्प की भांति तीन फेरे लेकर सबसे नीचे के चक्र मूलाधार में स्थित है। जड़, चेतन सभी में यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी शक्ति मानव की ऊर्जा शक्ति है। इस जगत में जैसे ही चेतन तत्त्व जन्म लेता है उसमें यह कुण्डलिनी शक्ति रहती है लेकिन मानव में यह शक्ति तीव्र होती है। जब तक यह शक्ति सुप्तावस्था में होती है तब तक मानव विषय वासना की ओर आकर्षित होता है जैसे ही यह कुण्डलिनी शक्ति योग साधना से जाग्रत् अवस्था में आ जाती है, मानव को ऐसी अनुभूति होती है मानो यह कोई सर्पिलाकार तरंग है जो उसमें अलौकिक ज्ञान का उद्रेक कर रही है। इस कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि षड् रिपुओं पर विजय प्राप्त होकर ईश्वर से तादात्म्य हो जाता है। इस प्रकार योग द्वारा इस कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत् होने पर

1. शरीरस्थ क्लेशों का शमन,
2. चित्तवृत्तियों का निरोध होकर परम सुख की समाधिस्थ अवस्था,
3. स्वरूपावस्थित हो कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति को षट्चक्र भेदन की साधना भी कहते हैं। जिस प्रकार पी.एच.डी. एक डिग्री है इसे किसी भी भाषा में प्राप्त किया जा सकता है उसी प्रकार आत्म तत्त्व, आत्म शक्ति एक है उसे प्राप्त करने के, विवेचन करने के, विष्लेषण करने के और साधना विधान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। शंकराचार्य की *आनन्दलहरी* में इसी तरह के विचार वर्णित है। योग दर्शन के समाधिपाद में कहा गया है।

'विशोका वा ज्योतिष्मती'—*योगसूत्रम्, 3.36*

शोक सन्तापों का हरण करने वाली ज्योति शक्ति के रूप में कुण्डलिनी शक्ति की ओर संकेत है। इस समस्त शरीर को, सम्पूर्ण जीव कोषों को, महाशक्ति को संभालने वाली प्रक्रिया प्राण हैं। इस प्रक्रिया के दो ध्रुव, दो खण्ड हैं एक को चय प्रक्रिया (एनाबॉलिक एक्शन) तथा दूसरे को अपचय प्रक्रिया (कैटाबोलिक एक्शन) कहते हैं। इसी को दार्शनिक भाषा में शिव और शक्ति भी कहा जाता है। शिव क्षेत्र सहस्रार तथा शक्ति क्षेत्र मूलाधार कहा गया है। इन्हें परस्पर जोडने वाली, परिभ्रमण शील शक्ति कुण्डलिनी हैं।

सहस्रार और मूलाधार का क्षेत्र विभाजन करते हुए मनीषियों ने मूलाधार से लेकर कण्ठ पर्यन्त का क्षेत्र एवं चक्र संस्थान 'शक्ति' का स्थान बताया है तथा कण्ठ के ऊपर का स्थान 'शिव' देश कहा है।

मूलाद्धाराद्धि षट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम्।
कण्ठादुपरि मूर्द्धान्तं शाम्भवं स्थानमुच्यते।। — *वराहश्रुति।*

मूलाधार से सहस्रार तक की, काम बीज से ब्रह्म बीज तक की यात्रा महायात्रा है। योगी इसी मार्ग को पूरा करते हुए परम लक्ष्य तक पहुंचते है। जीव सत्ता प्राण शक्ति का निवास जननेन्द्रिय मूल में है। प्राण जननेन्द्रिय के रजवीर्य से उत्पन्न होते है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव का निवास स्थान जिस मस्तिष्क के मध्य केन्द्र में है। इस नाभिक (न्यूकलियस) को सहस्रार कहते हैं। आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया यहीं से होती हैं। आत्मोत्कर्ष की महायात्रा जिस राजमार्ग से होती है उसे मेरूदण्ड या सुषुम्ना कहते हैं। इस सुषुम्ना का एक सिरा मस्तिष्क का तथा दूसरा काम केन्द्र का स्पर्श करता है। इड़ा पिङ्गला प्रवाह इसी क्षेत्र को दोहराने के लिए नियोजित किए जाते हैं। जैसे साबुन और पानी से कपड़े धोए जाते हैं। वैसे ही इड़ा पिङ्गला के माध्यम से किए जाने वाले नाड़ी शोधन प्राणायाम मेरूदण्ड का संशोधन करने के लिए हैं। इन दोनों ऋणात्मक और धनात्मक शक्तियों का उपयोग सृजनात्मक उद्देश्य से भी होता हैं। इड़ा और पिङ्गला संशोधन और सृजन का दोहरा काम करते हैं। जो आवश्यक है उसे विकसित करने में वे कुशल माली की भूमिका निभाते हैं। माली के द्वारा किए जाने वाला जमीन खोदने जैसा ध्वंसात्मक कार्य किया जाता है। यह उत्खनन का कार्य उन्नयन के लिए होता है। माली भूमि खोदने, खरपतवार उखाडने, पौधे को काँट-छाँट करते समय ध्वसांत्मक कार्य में संलग्न होता है किन्तु खाद पानी देने, पौधों के संरक्षण करने का काम उसकी उदार सृजनशीलता का द्योतक है। उसी प्रकार इड़ा पिङ्गला की दोहरी भूमिका होती है। इड़ा पिङ्गला के माध्यम से सुषुम्ना क्षेत्र से काम करने वाली प्राण विद्युत् का विशिष्ट संचार प्रस्तुत करके कुण्डलिनी जागरण की साधना सम्पन्न की जाती है।

कुण्डलिनी शक्ति के सात चक्र होते हैं— 1. मूलाधार, 2. स्वाधिष्ठान, 3. मणिपुर, 4. अनाहत, 5. विशुद्धि, 6. आज्ञा और 7. सहस्रार।

कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने से पहले योग के द्वारा चित्त को शुद्ध करके हठयोग की क्रियाओं से नाड़ी शोधन आवश्यक है।

पतञ्जलि ने लिखा है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। — *पतञ्जलियोगसूत्र।*

अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है।

गीता में कहा है— ''योगः कर्मसु कौशलम्।'' कर्मों में कुशलता ही योग है तथा

'' सिद्ध्यसिद्ध्यो समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।''

अर्थात् सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, शीत और ऊष्ण आदि द्वन्द्वों में समभाव रखना ही योग है।

डॉ. बी. जी. रेले के अनुसार ''योग वह विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य का अन्तःकरण इस योग्य बन जाता है कि वह उच्च स्फुरणों की तरफ अग्रसर होता हुआ असीम चेतन व्यापार को प्राप्त करता है।''[1]

डॉ. एस. एन. दास गुप्त के अनुसार ''योग का अर्थ किसी वस्तु विषेष के साथ चित्त का शान्तिमय संयोग है।''[2]

इस प्रकार योग में व्यक्ति चिन्तन की दृष्टि से बहिर्मुख के स्थान पर अन्तर्मुखी हो जाता है। योग अपने आप में एक मनोविज्ञान है। अनेक व्यक्ति योग करने का प्रयास करते हैं, समाधि लगाने की चेष्टा करते हैं। परन्तु उनका मन शान्त नहीं होता क्योंकि मन चञ्चल है। योग व समाधि सिद्धि के लिए महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाङ्गिक योगमार्ग का निर्देश किया है—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

— योगसूत्र, 2.29

इनमें से प्रत्येक अङ्ग परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। इस अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश बढता है।

योग की परिधि में योग मानव मन में सुप्त अन्तर्दृष्टि को प्रबोधित और आन्दोलित करता है जिसमें अन्तः ज्ञान का अभाव रहता है वह मानव विकास से विश्रान्ति का प्रकाशमय मार्ग छोडकर कण्टक से आकीर्ण मार्ग पर चल पड़ता है। इस मार्ग पर चलकर वह न तो इहलौकिक को प्राप्त कर सकता है और न पारलौकिक को। योग दुराग्रह, मिथ्याचार, शोक, द्वेष, राग से दूषित प्रज्ञा को परम ज्ञान से आलोकित कर देता है जिससे उसे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक हो जाता है। योग से बुद्धि अचल व गहन हो जाती है, चित्त का प्रक्षालन हो जाता है। चित्त स्थिर हो जाता है उसकी कलुषता प्रक्षालित हो जाती है। चित्त से काम, क्रोध, राग, द्वेष, अहंकार, लोभ, मोह का आवरण हट जाता है और वह अलौकिक ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। योगजन्य चेतना और एकाग्रता से परिष्कृत बुद्धि से युक्त मनुष्य का आचरण ऋषि जन तुल्य हो जाता है।

इस प्रकार ''योग स्वयं की स्वयं के माध्यम से स्वयं तक पहुंचने की यात्रा है।''

आज के प्रदूषित वातावरण में योग एक ऐसी औषधि है जिसका कोई साइड इफैक्ट नहीं है। योग आज हमारे लिए आवश्यक है, हमारे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। योग के माध्यम से आत्मिक संतुष्टि, शान्ति और ऊर्जावान् चेतना की अनुभूति होती है जिससे हमारा जीवन सकारात्मक ऊर्जा संतोषमय और आनन्द के साथ आगे बढता है।

योग की परिधि में पहुंचा व्यक्ति न तो इन्द्रियों के प्रति ही असहिष्णु रहता है और न ही समाज के प्रति। उसका चित्र, मस्तिष्क कर्त्तव्य बोध से देदीप्यमान हो जाता है और यह कर्त्तव्य बोध सुप्त व निराश हो रही समस्त शक्तियों को रचनात्मकता व आत्मज्ञान की ओर प्रवाहित करता है। योग का अनुष्ठान मानव के समस्त उद्वेगों को निरस्त कर मन को सबल बनाता है। योगाभ्यास से मानव की संकल्प शक्ति सुदृढ होकर जीवन मे आनन्द का उद्रेक करती है।

वर्तमान में असंतोष, ऐश्वर्य की कामना, लालसा जनित भयावह रक्त रञ्जित संहार को, संघर्ष को विराम देने वाला एक मात्र साधन योग है। योग में मानव के सामान्य व्यवहार से लेकर ध्यान एवं समाधि सहित आध्यात्म की उच्चतम अवस्थाओं का अनुपम समावेश है। योग संसार के समस्त व्यावहारिक और परमार्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहज-सुलभ एवं प्रभावी उपाय है।

सन्दर्भ:

1. द मिस्टिरियस कुण्डलिनी— डॉ. बी. जी. रेले पृ. 10 -11
2. द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलोसफी— डॉ. एस. एन. दास, गुप्त, पृ.33

डी.बी. (पी.जी.) महाविद्यालय,
खेरली, अलवर।
चलवाणी-9414793809

कुण्डलिनीशक्तिसाधनाविधिर्दर्शनञ्च

डॉ. भूदेवशर्मा

विविधविद्याविद्योतितान्तःकरणाः विद्वांसोऽद्यतनीयो विषयोऽस्ति 'कुण्डलिनीशक्ति-साधनाविधिर्दर्शनञ्च' अस्मिन् विषये सर्वप्रथमं विचारणीयमस्ति का कुण्डलिनी शक्तिः? शब्दशास्त्रदृष्ट्या कुण्डले अस्याःस्त इति कुण्डलिनी आकृत्या भुजङ्गी वा। तत्स्वरूपं च *तन्त्रराजे*—

मूलाधारस्थवह्न्यात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराऽथ तैजसी।।
प्रसुप्तभुजगाकारा त्रिरावर्ती महाद्युतिः।
मायाशीर्षा नदन्ती तामुच्चरन्त्यनिशं खगे।
सुषुम्णा मध्यदेशे सा यदा कर्णद्वयस्य तु।
पिधाय न शृणोत्येनं ध्वनिं तस्य तदामृतिः। इत्यादिः।

अत्र कुण्डलिनी शब्दे कुण्डशब्दोऽपि विचारणीयोऽस्ति कुणशब्दात् ड प्रत्ययेन कुण्ड शब्दो निष्पद्यते यः पात्रस्यायतनस्य वा वाचकोऽस्ति यथा अग्निकुण्डः जलकुण्डो वा। इहं शरीरमपि पात्रत्वं भजते यतो हि जीवात्मा चिति शक्तिः प्राणशक्तिः वा आत्मा वा अस्मिन् शरीररूपात्मके कुण्डे एव निवसति। *योगवासिष्ठे* चूडालोपाख्याने।

पुर्यष्टकापराख्यस्य मनसो जीवनात्मिकाम्।
विद्धि कुण्डलिनीमन्तरामोहस्येव मञ्जरी।। इति।

नामनिर्वचनञ्च *देवीपुराणे* यतः शृङ्गाटकाकारा कुण्डलिनीत्युच्यते तत् इति। यद्वावाग्भवबीजस्य कुण्डलिनीति संज्ञा। तद्रूपाः बिसन्तु कमलनालं तदेव तन्तुस्तद्वत्तनीयसी अतिशयेन कृशाकृतिः। नीवारशूकवत्तन्वी पीताभास्वत्यणूपमेति श्रुतेः। अन्यत्र च *देव्यथर्व शीर्षेऽपि* द्रष्टव्यम्—

"सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति।साऽब्रवीत् अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् शून्यं चाशून्यं च। अहमानान्दौ अहं विज्ञानाविज्ञाने अहं ब्रह्माब्रह्मणि वेदितव्ये अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि अहमखिलं जगत्।" इतिश्रुतेः।

वामकेश्वर तन्त्रेऽपि यथा—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा।।
मूलकन्दं फणाग्रेण दंष्ट्राकमलकन्दवत्।
मुखेण पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समन्विता।।
पद्मासनगता स्वस्था गुहमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः।।
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् तदा।।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः।
रुद्रग्रन्थिं विभिद्यैव कमलानि भिनत्ति षट्।।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदिते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृत्तिकारणम्।। इति।।

अत्र *वामकेश्वरतन्त्रे* कुण्डलिनीशक्ते स्वरूपचिन्तनं तथा च तस्याः साधनापद्धतेरपि चिन्तनमवलोक्यते।

ब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे भगवतः हयग्रीवस्य महर्षेः अगस्तस्य च संवादरूपे यत् ललितोपाख्याननाम्ना ललितासहस्रनामाख्य स्तोत्ररत्नं प्राप्यते तत्रापि कुण्डलिन्याः सम्यक् परिचय उपासनापद्धतिश्चापि प्राप्यते। तत्र प्रथमं श्लोकमेव कुण्डलिन्याः स्वरूपं प्रस्तोति। यथा—

श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी।
चिदग्निकुण्डसम्भूता देवकार्यसमुद्यता।।

अत्र चिदग्निकुण्डसम्भूता या शक्तिः सैव ज्ञानकुण्डसमुद्भूता चितिशक्तिः कुण्डलिनी शक्तिरस्ति। अत्र *गीतायां* भगवता कृष्णेनोक्तश्लोकमपि द्रष्टव्यमस्ति—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरूतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।

स्पष्ट्यते यत् ज्ञानाग्निकुण्डसम्भूता चिद्ग्निः कुण्डलिनी शक्तिरेव आत्मज्ञानरूपा पराम्बा भगवती ललितैव। अन्यच्च—

त्रिपुरां कुलनिधिमीडेऽरुणश्रियं कामराजविद्धाङ्गीम्।
त्रिगुणैर्देवैर्निनुतामेकान्तां विन्दुगां महारम्भाम्।।

अत्र त्रिपुरेति शब्दस्य रहस्यमवलोकनीयम् यथा त्रिपुरेति त्र्यात्मकं पुरं भूपुरं मण्डलकोणरेखामन्त्रादिसमूहो वा यस्या: सा त्रिपुरा। तदुक्तं *कालिकापुराणे*—

त्रिकोणं मण्डलं चास्या भूपुरं च त्रिरेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षर: प्रोक्तस्तथा रूप त्रयं पुन:।।
त्रिविधा कुण्डलिनी शक्ति: त्रिदेवानाश्च सृष्टये।
सर्वे त्रयं त्रयं यस्मात् तस्मात्तु त्रिपुरा मता।।

कुलनिधिशब्दस्य चिन्तनमपि द्रष्टव्यम् यथा—

कुलस्य सजातीयसमूहस्य मातृमानमेयरूपत्रिपुट्या एकज्ञानविषयत्वेन साजात्यात्। घटमहं जानामि इत्येवं ज्ञानाकारात् जानामीति तमेवभान्तमनुभाति सर्वं जगत्। इति श्रीमदाचार्यभगवत्पादोक्ते:। तदेव हि कुलं। सजातीयै: कुलं यूथमिति कोशात्। परमशिवादिस्वगुरुपर्यन्तो वंशो वा कुलम्। "संख्या वंश्येनेति" *पाणिनि* सूत्रे वंशो द्विधा, विद्यया जन्मना चेति। महाभाष्याद् आचारो वा कुलम्—

न कुलं कुलमित्याहुराचार: कुलमुच्यते।
आचाररहितो राजन् नेह नामुत्र नन्दति।। — *भविष्योत्तरपुराणे।*

सुषुम्ना मार्गो वा कुलम्। कु: पृथिवी तत्त्वं लीयते यस्मिन् तदाधारचक्रं तस्य शक्यस्य सम्बन्धात्। कुलनिधिरेव कुण्डलिनीति सिद्धम्।

अरूणोपनिषद्यपि श्रूयते—

उत्तिष्ठत मा स्वप्त अग्निमिच्छध्वंभारता:।
राज्ञ: सोमस्य तृप्तास: सूर्येण सयुजोषस:।। इति।

इयं चोपनिषत् सर्वापि भगवती पराम्बापदैव। उपबृंहणदर्शनात्। अरुणोपनिषद्-गीतेतिश्यामलसहस्रनामसु पाठाच्च। पृश्निनामकानामुपासकानां परस्परमुक्तिरियं भारती सरस्वतीविद्येति यावत्। तत्सम्बन्धिनो भारता: साधका: उत्तिष्ठत अर्थात् उपासनायां प्रवर्तध्वम्। मा स्वप्त अर्थात् प्रमत्ता मा भूत। अन्तर्भावितण्यथौ वा कुण्डलिनीकर्मकाविमौ धातूयोजनीयौ। अग्निं स्वाधिष्ठानगताग्नितेजोमयीं कुण्डलिनीभिच्छध्वमिच्छादण्डेना-हत्योत्थापयध्वम्। सूर्येण सयुजा विशुद्धिअनाहतचक्रयोर्मध्यवर्तिसूर्यसहितेन तेनाग्निना उषसो दग्धस्य द्रुतस्येति यावत्। सोमस्य उमया राजराजेश्वर्या सहितस्य राज्ञो राजराजेश्वरस्य सहस्रारीयचन्द्रमण्डलान्तर्गतस्य वा। अर्थादमृतेन तृप्तासो भवत तृप्यत।

अग्निकुण्डलिनीमुत्थाप्य सूर्यकुण्डलिन्या संयोज्य ताभ्यां चन्द्रमण्डलशिवशक्ति-सामरस्येन द्रावयित्वा तदुत्थामृतधाराभिर्द्विसप्ततिसहस्रनाडीमार्गानापूर्य तृप्ता भवेदित्यर्थः।

कुण्डलिनीविषये ललितासहस्रनामाख्यस्तोत्रस्य प्रत्येकनाम्ना तस्या स्वरूपमवलोक्यते यथा—

परं ज्योतिः परं धाम परमाणुः परात्परा।
सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा गोप्त्री गोविन्दरूपिणी।
संहारिणी रुद्ररूपा तिरोधानकरीश्वरी।।

परंज्योतिः शब्दस्य व्याख्याने श्रीभास्कराचार्यैरुक्तं यत् परमुत्कृष्टं ब्रह्मात्मकं ज्योतिः। *बृहदारण्यके* चोक्तम्—

तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः आयुर्होपासतेऽमृतमिति।

— *बृहदारण्यकोपनिषद् 4.416*

श्रीमद्भगवद्गीतायामपि भगवता श्रीकृष्णेनोक्तम् —

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। – *श्रीमद्भगवद्गीता 15-6*

कुण्डलिनीविषये *कूर्मपुराणोक्तमपि* द्रष्टव्यम्—

सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमितिश्रुतिः।। – *कूर्मपुराणे।*

अस्याः शक्तेर्विषये तन्त्रशास्त्रेषु प्रायः निम्नानुसारेणोल्लेखं प्राप्यते—मेरुदण्डे इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना मुख्यत्वेन तथा च वज्रिणी, चित्रिणी, ब्राह्मी नाड्यः सुषम्नायामेव सूक्ष्मत्वेन मस्तिष्कप्रदेशात् गुदलिङ्गयोः मध्यप्रदेशं यावत् यत्र मेरुदण्डस्य समाप्तिर्भवति तावत् पर्यन्तं परस्परं संश्लिष्टरूपेण नाड्यः भवन्ति तं स्थानं तन्त्रशास्त्रे योनिः नाम्ना प्रथन्ते। तत्र स्वयम्भूलिङ्गेन सार्धत्रिवलिभिः श्लिष्ट्वा अधोमुखीभूता भुजङ्गाकृतौ कुण्डलिनी शक्तिः शयते। कुण्डलिनीशक्तेः वासस्थानमेव मूलाधारचक्ररूपेण स्वीकृतमस्ति।

अस्य चतुर्दलपद्मरूपेणस्वरूपवर्णितमस्ति वर्णश्च रक्तं कर्मेन्द्रीगुदा, ज्ञानेन्द्री च नासिका स्वीकृता। अत्र पृथिवी तत्त्वस्य वासः स्वीकृतः, अस्यैव भूलोकनाम्नी संज्ञास्ति।

'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अस्य सिद्धान्तस्य स्वाभाविकतया स्वीकृत्या भौतिक- पिण्डवत् शरीरपिण्डेऽपि सप्तलोकवत् सप्तचक्राणि स्वीकृतानि। योगिनः प्राणायामादिक्रियाभिः तां सुसुप्तां कुण्डलिनीं जागृतये प्रयतन्ते।

प्राणायामादिभि: क्रियाभि: कारण–सूक्ष्म–स्थूलेति शरीरत्रयाणाम् शुद्धेरनन्तरमेव पराशक्तीनां जागरणं सम्भाव्यमिति योगशास्त्रस्य सार्वभौमिक: सर्वमान्य: सिद्धान्तोऽस्ति। कुण्डलिनीशक्ते: साधना गुरुमुखेनैवावगन्तव्यास्ति। गुरुं विना महती क्षति: सम्भाव्यास्ति। विद्येयं गोपनीयास्ति। परञ्च दृश्यते अनेनति दर्शनम् परिभाषां सार्थकीकर्त्तुमस्या: विद्याया: शक्तेरूर्जाया: वा समाजे कथं प्रयोगं कर्त्तुं शक्यते इति दर्शनशास्त्रीयविदुषां परं लक्ष्यं भवितव्यम्।

मम दृष्टौ कुण्डलिनी शक्तिरस्माकं जीवनी शक्ति: चेतना संवेदनाशक्तिरस्ति। अस्या: शक्ते: जागरणमस्ति लोकहितायचिन्तनम्, स्वकीय–सर्वाङ्गीण–नैतिक–भौतिकाध्यात्मिक प्रोन्नत्यै चिन्तनमाचरणञ्च। येनाचरणेन जीवस्य समाजे पतनं न भवेत् तस्य भौतिकताया: चाकचक्ये सीमारहितं सञ्चयं सीमारहितं कामं, क्रोधं, रागं, मोहं न स्यात्।

भारतीयाध्यात्मिकपरम्परायां कुण्डलिनीशक्तेरूर्जाप्राप्तमनीषिणां जीवनं लोकहिताय सर्वजनकल्याणाय मोक्षप्राप्ते: कटिबद्धाय भवति।

विद्येयं क्षुद्रमानवानां केवलं भोगवादिनां कृते वर्जनीयास्ति। तैरस्या: दुरुपयोगस्य सम्भावनास्ति। एतदर्थमुक्तम्—

नाविद्यावेदिने ब्रूयान्नाभक्ताय कदाचन।
यथैव गोप्याश्रीविद्या तथा गोप्यमिदं मुने।।
पशुतुल्येषु न ब्रूयात् जनेषु नास्तिकेषु च।
यो ददाति विमूढात्मा सोऽनर्थ: समुहान्स्मृत:।।

प्राचार्य:,
राजकीयवरिष्ठउपाध्यायसंस्कृतविद्यालय:,
अमरसर, जयपुरम्।

कुण्डलिनी शक्ति साधना एवं कवच पाठ

पं. रमेशचन्द्र शर्मा मिश्र

कुण्डलिनी शक्ति को आद्या शक्ति भी कहा है। परममूल तत्त्व परमब्रह्म परमशिव तत्त्व का स्थान सहस्रारोपरि परमबिन्दु माना है, यहाँ कुण्डलिनी शक्ति परमशिव के साथ रमण करती है। यहीं हंस कमल के द्वादशदल मध्य त्रिकोण में परमशिव गुरुरूप में निवास करते हैं।

शिव के श्वेतबिन्दु में श्वेतचररणपादुका पूजन, शक्ति के रक्तबिन्दु मे रक्तचरण पादुका तथा दोनों की युति रूप में श्वेतरक्तमिश्र चरणपादुका अर्चन व न्यास ऊर्ध्वाम्नाय दीक्षाक्रम में किया जाता है।

ब्रह्म व शक्ति के सामञ्जस्य से लोकों की रचना होती है। कुण्डलिनी अनन्तशक्ति (शून्य) रूपा है, षट्चक्रों में उतरती हुई अनेक लोकों के निर्माण में भी अनन्तशक्ति (शून्य) का व्यय होता है। शेष शक्तिरूप में मूलाधारचक्र में आकर निवास करती है। शून्य में से शून्य का व्यय होने पर मूलाधारस्थित शेष शक्ति भी शून्य (अनन्त) है।

यह शेषशक्ति मूलाधार में स्थित शिवलिङ्ग को साढे तीन वलयरूप में स्थित है। यह जीवात्मा व आत्मा दोनों में है। कुण्डलिनी शक्ति का निवास आत्मा में जागृत् रहता है, जीवात्मा में कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में सुप्त रहती है।

जीव जन्म लेने के बाद गर्भकाल व प्रसूतिकाल के सब क्लेशों को भूल जाता है फिर वह जब अपने अस्प्पष्ट शब्दों में रुदन या शब्दोच्चारण करता है तब वह शब्द 'सुषम्ना' कुण्डलिनी वेष्टित मूलाधार में फैलने लगता है।

अथ स्वमुतारयितुमाह्वयेज्जननीं मुहुः ।
अवैशद्यान्मुखस्रोतोमार्गस्याऽविशदाक्षरम् ॥
अप्यव्यक्तं प्रलपति यदा कुण्डलिनी तदा ।
मूलाधारे विसरति सुषुम्नावेष्टिनी मुहुः ॥
यदा स शिशुरव्यक्तमपि प्रलपति तदा कुण्डलिनी मूलाधारे
सुषुम्नावेष्टनी मुहुर्विसरतीत्यन्वयः ।
अपिशब्दोऽव्यक्तप्रलापोपसंग्रहार्थः।।

किञ्च मूलाधारे प्रथमुदितवेष्टनमपि सूचितम् किञ्च प्राङ्।
कुण्डलिनीति पश्यन्त्यवस्था पर्यन्ता परा वागुच्यते।।

यही कुण्डलिनी परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी वाणीरूपा है, यही मन्त्ररूपा तथा तद्देवरूप, ब्रह्मरूपा है। यही कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग से ही षट्चक्रों को भेदन करती हुई सहस्रार में गमन करती है।

आकृतिं स्वेन भावेन पिण्डलतां बहुधा विदुः ।
कुण्डली सर्वथा ज्ञेया सुषम्नानुगतैव सा ॥

कुछ विद्वान महाशक्ति 'ह्रीं' को हृदयकमल स्थित कुण्डलिनी शक्ति के रूप में जानते है। यह भगवती कुण्डलिनी भृङ्गी कीट के समान ध्वनि निरन्तर करती रहती है।

कुण्डलिनी बीज मन्त्र एवं न्यास विधानम्

शङ्कराचार्य ने *प्रपञ्चसार* तन्त्र चतुर्थ पटल में कुण्डलिनी का बीज मन्त्र 'ह्स्रां ह्स्रीं' बताया है तथा इसका न्यास नाभिचक्र में स्थित त्रिकोण में करना चाहिये।

कुण्डलिनी न्यास—

ब्रह्मा सरस्वती का स्मरण करे।

ह: परब्रह्मणे पराशक्त्यै नम: — हृदय में न्यास करे।

हं साक्षिणे साक्षिण्यै नम: — व्यापक न्यास करे।

हौं चतुमूर्तये चतुमूर्त्यै नम: — से भी व्यापक न्यास करे।

हों सर्वेस्वराय मूलप्रकृत्यै नम: — हृदये।

हैं रुद्रसर्वेश्वराय उमामूलप्रकृत्यै नम: — भ्रूमध्ये।

हें विष्णुसर्वेश्वराय लक्ष्मीमूलप्रकृत्यै नम: — हृदये।

ह्स्रीं ब्रह्मसर्वेश्वराय सरस्वतीमूलप्रकृत्यै नम: — नाभौ। (त्रिकोणे)

रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा के न्यास नाभि मध्य त्रिकोण के कोणों में भी करे। यथा—

ह्स्रीं रुद्ररुद्रायोमोमायै, हूं रुद्रविष्णवे उमालक्ष्म्यै, ह्रीं रुद्रब्रह्मणे उमासरस्वत्यै नम:। इति रुद्रसर्वेश्वरपरित: (1)। हूं विष्णुरुद्राय लक्ष्म्युमायै, हूं विष्णु विष्णवे लक्ष्मीलक्ष्म्यै, ह्रीं विष्णुब्रह्मणे लक्ष्मीसरस्वत्यै नम:। इति विष्णुसर्वेश्वरपरित: (2)। ह्रीं ब्रह्मरुद्राय सरस्वत्युमायै, ह्रां ब्रह्मविष्णवे सरस्वती लक्ष्म्यै, हं ब्रह्मब्रह्मणे सरस्वती सरस्वत्यै नम: इति ब्रह्मसर्वेश्वरपरित: (3)।

कुण्डलिनी उत्थान एवं व्युत्थान

मन्त्र साधक अपने मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति (आत्मतेज) को मूलाधार से उठाकर सहस्रार स्थित परमात्मरूपी परमगुरु (शिव) से मिलाने की भावना करता है। इस भावना की क्रिया द्वारा वह सहस्रार स्थित परमात्मन् गुरु से 'चिदादित्य रूपी' मन्त्रमय अमृत प्राप्त करता है। सहस्रार से वह आत्मतेज पुन: अपने मूलस्थान मूलाधार की ओर लौटता है। सहस्रार से स्रावित होने वाले मन्त्रमय अमृत से उस साधक का हृदय सहित समस्त शरीर आप्लावित हो जाता है, इसे ही कुण्डलिनी का उत्थान तथा व्युत्थान क्रम कहा जाताहै।

सौन्दर्य लहरी में भी कहा गया है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथम् ।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥
सुधाधारासारैश्चरण – युगलान्तर्विगलितै:,
प्रपञ्चं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥

शङ्कराचार्य रचित *प्रपञ्चसार तन्त्र द्वितीय पटल* के अनुसार कुण्डलिनी अपने आकार से 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10, 12, 50 भेद से उतनी उतनी गुनी बढती जाती है।

त्रिचतु: पञ्चषट्सप्तचाऽष्टशो दशशोऽपि च ।
अथ द्वादशपञ्चाशद् भेदेन गुणयेत् क्रमात् ॥

इसकी व्याख्या विस्तृत है।

गायत्रीशिर एवं कुण्डलिनी शक्ति

कुण्डलिनी शक्ति के आरोहण-अवरोहणा साधना क्रम को ब्रह्मशक्ति प्राप्ति का मार्ग एवं ब्रह्मत्व प्राप्ति योग साधना कही है।

सहस्रार से सोम की प्राप्ति होती है एवं कुण्डलिनी तेज अग्निरूपा है। अग्नि व सोम की युति से अनेकानेक लोकों का निर्माण होता है। जन्म जन्मान्तरों के भोगकाल का निर्धारण भी इन्हीं लोकनिर्माणों के अन्तर्गत आता है। यदि हम कुण्डलिनी साधना द्वारा इस नियति पर अधिकार कर लेते हैं तो जन्म मरण के बन्धन को काटा जा सकता है।

गायत्री शिर मन्त्र

आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

'अप्' सोमात्मक है जो सहस्रार से स्रावित होता है। 'ज्योति' अग्न्यात्मक कुण्डलिनी शक्ति है। अप् और अग्नि के तेजस् से उत्पन्न रस से ही कारणकार्यात्मक सारा संसार निर्मित है। वह रस अविनाशी है अत: इसे अमृत कहते है। अमृतरूपी रस व्यापक है अत: यह ब्रह्म कहलाता है।

कुण्डलिनी जागृत करने के उपाय

(क) मन्त्र दाता द्वारा मन्त्र प्राप्तकर जप करे। मूलाधार से कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करके उठाये, मूलाधार के चार दलों में मन्त्र जप कर कुण्डलिनी को सुषम्ना मार्ग में प्रवेश कराकर स्वाधिष्ठानादि षट्चक्रों का भेदन करते हुये तथा चक्रों के प्रत्येक दल में मन्त्र जप करते हुये सहस्रार में ले जाये वहाँ से अमृतपानकर कुण्डलिनी को वापस मूलाधार में लाये तथा यह क्रम बार बार करे।

(ख) शक्तिपात

जैसे सोये हुये व्यक्ति को आवाज देकर (शब्द से), स्पर्श करके, ताडन करके उठाया जाता है उसी प्रकार दीक्षा देते समय गुरु शब्द मन्त्र द्वारा, स्पर्श करके या न्यासादि द्वारा शिष्य के शरीर में शक्तिपात् करके षट्चक्रों व मूलाधार में शक्तिपात् करता है।

शक्तिपात् के अलग अलग अनुभव अलग-अलग साधकों को होता है। गुरुस्पर्श किसी को ठण्ठा, किसी को रोमांचित करने वाला, किसी का ध्यान में शून्य महसूस करना, किसी को ज्योति महसूस होना इत्यादि लक्षण होते हैं। शक्ति का संपात उसी अनुपात में होगा जितना शिष्य संवेदनशील होकर गुरु में दृढ़ विश्वास व्यक्त करता है।

21 अगस्त 2015 में तन्त्र एवं आध्यात्मिक जीवन सेमीनार, किशनगढ़ में यूरोप के एक देश लतविया निवासी मेरी एक शिष्या अचिन्त्यरूपानाथ ने कहा कि मैं जब 2014 मे आपसे मिलने आयी थी तब आपसे सिर्फ वार्तालाप किया तब दिव्य चेतना के लक्षण शरीर में अपने देश वापस लौटने पर भी 20 दिन तक रहे और अभी जब कल आपने दीक्षा प्रदान की और आपने मेरे शरीर में न्यास किये तो मेरी आँखों के सामने बन्द नेत्रों में भी इतना तीव्र प्रकाश हुआ कि मैं देख नहीं सकी।

(ग) गुरु प्रदत्त ज्ञान से साधना करने पर प्रकाश पुञ्ज साधक के चारों ओर उत्पन्न होता है पश्चात् साधक के शरीर में प्रवेश करता है।

बेलारूस निवासी मेरे एक शिष्य प्रहलाद (एन्टोन प्रोहोव) ने बताया कि एक श्वेत प्रकाश पुञ्ज बाहर से मूलाधार में प्रवेश किया पश्चात् वह प्रकाश मूलाधार से सहस्रार में गया तथा मेरे पूरे शरीर में फैल गया जो करीब 15 मिनिट तक रहा।

(घ) मन्त्र, मन्त्रदाता व देवता में दृढ विश्वास सफलता प्राप्ति की प्रथम कुञ्जी है।

बुरहानपुर (म.प्र.) के एक संन्यासी ब्रह्मानन्द ने बगलामुखी साधना प्रारम्भ की। उनकी कुण्डलिनी की अग्नि इस प्रकार ऊपर उठी कि पेट, कण्ठ में तीव्र जलन तथा कान में गर्म शलाका डालने जैसी पीड़ा होने लगी। उन्होंने किशनगढ़ आकर मुझसे विधिवत् दीक्षा प्राप्त की। 4-5 दिन में धीरे धीरे सभी वेदनायें शान्त हो गई। 5-6 महिने में बुरहानपुर से आकर मार्गदर्शन प्राप्त करतेरहते है। 2 वर्षों के अन्तराल में अच्छी मेहनत करके प्रसिद्धि प्राप्त की तथा अप्रैल 2016 में उज्जैन कुंभ मे उनको महामण्डलेश्वर पद देने की प्रक्रिया चल रही है।

रूस निवासी मेरा एक शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ ने 5-6 वर्षों मे 80-90 लाख जप किये है उसने मैक्सिको, लतविया व ऑस्ट्रेलिया में मन्दिर निर्माण कर लिया है।

(ङ) प्राणायामादि से ध्यान साधना

(1) प्राणायाम द्वारा श्वाँस की गति पर नियन्त्रण होने लगता है तथा मूलाधार में भी स्पंदन शुरु होने लगता है। जिससे कुण्डलिनी जाग्रत् होने लगती है।

(2) भ्रूमध्य में ध्यान करने पर वहाँ दबाव पडता है एवं चेतना शून्य होकर ध्यान लगने लगता है।

(3) नाक के अग्रभाग व श्वाँस पर ध्यान केन्द्रित करने पर भी ध्यान लगने लगता है।

(च) तन्त्रग्रन्थों व हठयोग में द्विभाषा अर्थों मे कुछ प्रक्रिया बताई है। जो साधक बालरण्डा से व्यभिचार करे (अपने परमपति परमशिव से विरक्त हुई कुण्डलिनी को बलपूर्वक उठाये) भगिनी के कुचों का मर्दन करे (सुषुम्ना की इडा-पिङ्गला नामक बहिनों का स्तंभन करे) गोमांस का भक्षण करे (खेचरी मुद्रा से अमृत पान करे), गुरु के पद घात करे (जैसे धावक लंबी दौड़ करके गंतव्य पर पहुंच कर निढाल हो जाता है उसी प्रकार षट्चक्रों का भेदन करके श्वाँस प्रत्यंचा द्वारा सहस्रार में गुरुमण्डल पर पहुँच कर थक हार कर अपनी आत्मा को निढाल होकर गुरुपद पर समर्पित हो जाता है) तो उसकी मोक्ष हो जाती है।

(छ) मेरे सिद्धान्त में कुछ प्रायोगिक भिन्नता है। रस सहस्रार में है अमृतस्राव गुरुमण्डल से होता है, कुण्डलिनी तेजस अग्निरूपा है, षट्चक्रों में स्थित वर्णाक्षर बीजरूप है।

जैसे सूखी मिट्टी में हल चलाने से बीज अंकुरित नहीं होगा, मिट्टी में नमी होगी तभी बीज अंकुरित होगा। अत: पहले गुरु का ध्यान करके सहस्रार से अमृत प्राप्त करके उससे सभी चक्रों को प्लावित करे पश्चात् कुण्डलिनी तेजस को ऊपर षट्चक्रों में गमन कर उनके पद्मदलों में स्थित वर्ण बीजों को जागृत कर उनको पुष्ट करे तो षट्चक्र अच्छी तरह खिलेंगें।

यज्ञ विधान में भी आधार होम के पश्चात् 'अग्नये स्वाहा' एवं 'सोमाय स्वाहा' के पश्चात् 'अग्निसोमाभ्यां स्वाहा' से आहुति देते हैं। अनि व सोम के योग से ही लोक व सृष्टि का निर्माण होता है। अत: कुण्डलिनी उत्थान व रसपान से ही साधक की उन्नति होगी। यदि सोम स्थान का ध्यान न करके केवल कुण्डलिनी का ध्यान करोगे तो 2-3 वर्ष में भी कुण्डलिनी जागरण के लक्षण नही प्राप्त होगें।

(ज) साधक अपने चारों ओर इष्ट का प्रभामण्डल महसूस करता है उसकी अनुभूति होने पर प्रभामण्डल का अपने शरीर में सिमटना फिर स्वयं का प्रभामण्डल में लुप्त होने से स्वशरीर शून्य महसूस होता है तब आपको कुण्डलिनी व चक्रों का बोध नहीं होगा गहरा ध्यान लग जायेगा।

(झ) अलग अलग चक्रों की डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, हाकिनी इत्यादि योगनियाँ है उस तरह अलग अलग देवता की उपासना का अलग अलग चक्र पर विशेष प्रभाव है।

बगलामुखी व गणेश उपासना से मूलाधार में शीघ्र स्पन्दन होता है कुण्डलिनी ऊपर उठती है। त्रिपुरसुन्दरी उपासना में हृदय से सहस्रार तक प्राणवायु का गमन शीघ्र होता है। काली उपासना से पञ्चतत्त्वों का एक दूसरे में विलीनीकरण शीघ्र होता है।

(ञ) बहुधा कुछ साधकों का ध्यान शीघ्र लगने लगता है, शरीर में नशा सा होकर बेहोशी के समान होने लगता है। ध्यान लगते समय हाथ पैरों में खिंचाव, शून्यता का अनुभव नहीं होता वरन स्वयं का शरीर लघु होता अनुभव होता है। पश्चात् जैसे शरीर आकाश में विलीन हो गया है ऐसी शून्यता का अनुभव होता है। मन्त्र का आंशिक रूप से भान रहता है। ऐसे में कुण्डलिनी उत्थान की क्रिया चक्रों में ध्यान करना नहीं हो पाता है। काली उपासना में यह प्रक्रिया शीघ्र होती है।

(ट) न्यासादि द्वारा शरीर में देवताओं की स्थापना करने से अपने शरीर में शक्तिपात् की शक्ति अनुभव होती है।

मातृका न्यास, मन्त्र के विविध न्यास, षोढा, महाषोढा, यज्ञ, पर्वत, नदी, तीर्थ न्यासादि 150 प्रकार के न्यास है।

ऊर्ध्वाम्नाय दीक्षा में शुक्लचरण, रक्तचरण तथा रक्तशुक्ल मिश्रित चरण न्यास किये जाते हैं। ऊर्ध्वाम्नाय भी कई प्रकार के है।

कुण्डलिनी जागरण के सामान्य लक्षण

(1) गुदाद्वार में संकुचन का अनुभव होना।

(2) रीढ की हड्डी व कपाल में चीटियाँ चलने जैसा अनुभव होना।

(3) कमर का अकडना व वायु का सुषुम्ना में प्रवेश, मानों कोई वस्तु प्रविष्ट हो रही हो।

(4) नाभि में बन्ध लगना, ठोडी का झुककर पंसलियों पर ग्रीवा का झुकाव-दबाव बढना।

(5) मन्त्र जप करते समय जिह्वा का उलटकर पर तालु से चिपकना।

(6) भ्रूमध्य में इतना दबाव अनुभव करना जैसे कोई हथोड़े से चोट मार रहा हो।

(7) कपाल से 1-2 इंच ऊपर हवा का खिंचाव होना।

(8) कानों में नाद श्रवण होना।

(9) ध्यान करते समय आँखों की पुतलियों का ऊपर की ओर 90 डिग्री पर घूमना।

(10) कोई साधक हूंकारता है, कोई चिल्लाता है तो शेर की आवाज निकाला है व कोई फुदकने लगता है तथा साधक बैठे बैठे रोने लग जाता है।

(11) गर्दन के पीछे की हड्डी कुछ ऊपर उठ जाती है। गर्दन का व्यायाम, यौगिक क्रियायें करनी चाहिये।

कुण्डलिनी जागरण की समस्याएँ : समाधान

(1) ध्यान लगाते समय साधक के चिल्लाने, फुदकने पर सहायक घबराये नहीं आधे-एक घण्टे के बाद उसकी पीठ को ऊपर से नीचे की ओर सहलाये ध्यान उतर जायेगा।

(2) ज्यादा गहरा ध्यान लग जाये तो कान के पीछे की नसों को नीचे की ओर सहलाये, कमर पर नीचे की ओर सहलाये। जैसे मस्तिष्क पर मालिश करते हैं वैसे हाथ फेरे, कान के पास आवाज लगाये।

(3) चेतना में धीरे धीरे लौटे एक दम नीचे आने पर हृदय पर दबाव पड़ता है।

(4) सोते समय गहरा ध्यान लग जाये तो किसी के आवाज देने पर एकदम नहीं उठे, हृदय पर दबाव बनकर पसीने आजाते हैं 5-7 मिनिट में चेतना में आये।

(5) तेज बुखार होने पर मस्तिष्क में चिंतन व दबाव नहीं बनाये हृदय में जप करे तथा सहस्रार से अमृत द्वारा शरीर को सिंचन करे।

(6) उच्चरक्त चाप में भी कुण्डलिनी उत्थान की क्रिया नहीं करे। सहस्रार से अमृत स्राव की कल्पना करे तथा हृदय में जप करे।

(7) सोते समय रक्तचाप या अन्यकारण चिंता में हृदय बैठता हुआ अनुभव होवे तो हृदय कमल को ऊपर उठाने की कल्पना करे।

(8) निद्रा नहीं आने पर 'ॐ क्लीं कालरात्र्यै नम:' जप करे। विचारशून्य होकर जप करे। यदि विचार शून्य नहीं होवोगे तो ध्यान नहीं लगेगा अत: हृदय में जप करे अथवा भ्रूमध्य में जप करे।

(9) हृदयरोगी सोते समय कुण्डलिनी उत्थान का ध्यान नहीं करे, अपने कपाल को रिक्त पात्र समझे, कपाल मध्य में स्वप्नलोक की स्थिति आती है उसमें ध्यान करे।

(10) ध्यान करते समय वायु ऊपर उठती है तो किसी को अण्डकोष के पास, बड़ी आँत के पास गाँठ महसूस होने लगे तो तत्काल वायु को आगे बढाते हुये नाभिचक्र में जप करे।

(11) भ्रूमध्य में दबाव पड़े, नेत्र अन्दर धसते हुये महसूस हो तो कानों में ऊंगली डालकर नाद श्रवण का अभ्यास करे।

(12) किसी को ध्यान करते समय अत्यधिक भूख लगे तो फलाहार, अल्पाहार करके अभ्यास करे।

(13) किसी को नाद ध्वनि नगाड़े या बादल गरजने की तीव्र ध्वनि सुनाई देवे तो कपाल के मध्य अन्दर की ओर ध्यान लगाने का प्रयास करे, कान के पीछे की नसों को ऊपर की ओर खींचे।

(14) यदि कान में गर्म शलाका घुसने जैसा वेग महसूस होवे तो कान की नसों को ऊपर खींचे तथा 'वं' का जप करे। सहस्रार से अमृत सिंचन की कल्पना करे।

(15) यदि नीचे से वायु उठकर गर्दन के पास आकर अटक जाये और शरीर की अकडऩ पहलवान के शरीर प्रदर्शन के समान हो जाये तब गर्दन की नसों को खेंचकर चोटी तक लाये। कान की नसों को ऊपर खींचे, कंधे सहलाये।

(16) जहाँ कुण्डलिनी की रुकावट का अनुभव हो उस स्थान पर कुण्डलिनी मन्त्र 'हस्रां हस्रीं' का जप करे।

(17) गुरु से साधना के समय लक्षणों के बारे में चर्चा करते रहे या मार्गदर्शन प्राप्त करे।

(18) अच्छे ध्यान के समय कभी कभी सूक्ष्म शरीर स्वशरीर से निकलता हुआ, उड़ता हुआ महसूस हो 5-6 घण्टे तक भी प्रयास करने पर वापस नहीं आये, ध्यान लगा रहे तब गुरु का स्मरण करने पर प्राकृतिक मदद मिलती है और सूक्ष्म शरीर स्वशरीर में पुन: लौट आता है, साधक सामान्य अवस्था में आ जाता है।

श्री कुण्डलिनी कवचम्

प्रपञ्चसार तंत्र में कुण्डलिनी बीज मन्त्र 'हस्रां हस्रीं' कहा है। इस कवच में क्लीं, लृं, लॄं एवं माया बीज का उल्लेख श्लोक 4-5 में किया है। 'लृं' का 'ह्रीं' के संयोग से 'ह्स्रीं' बगला बीज मन्त्र बन जाता है जो कि प्राणवायु के साथ मन का स्तंभन कर कुण्डलिनी की गति को बढाता है। श्लोक 6 में मातृकावर्ण पुटिता भी लिखा है । अर्थात् कुण्डलिनी बीज मन्त्र 'हस्रां हस्रीं' या 'क्लीं', 'ह्स्रीं' को मातृका पुटित कर जप करने से भी कुण्डलिनी जागृत् होती है।

इस कवच में षट्चक्रों की योगिनी तथा चक्रों के दलों में स्थित देवी के स्वरूपों का भी वर्णन है।

श्री आनन्द भैरवी उवाच

अथ वक्ष्ये महादेव! कुण्डलीकवचं शुभम् ।
परमानन्ददं सिद्धं सिद्धवृन्दनिषेवितम् ॥1॥
यद् धृत्वा योगिनः सर्वे धर्माधर्मप्रदर्शकाः ।
ज्ञानिनो मानिनो धीरा विचरन्ति यथा नराः ॥2॥
सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च करस्थाः सर्वदेवताः ।
एतत् कवचपाठेन देवेन्द्रो योगिराड् भवेत् ॥3॥
ऋषयो योगिनः सर्वे जटिलाः कुलभैरवाः ।
प्रातःकाले त्रिवारं च मध्याह्ने वारयुग्मकम् ॥4॥
सायाह्ने वारमेकं तु पठेत् कवचमुत्तमम् ।
पाठादेव महायोगी कुण्डलीदर्शनं लभेत् ॥5॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीकुलकुण्डली कवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीकुलकुण्डली देवता, सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—श्री ब्रह्मा ऋषये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, श्रीकुलकुण्डली देवतायै नमः हृदि, सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

कवचपाठः

ॐ ईश्वरी जगद्धात्री ललितासुन्दरी परा ।
कुण्डली कुलरूपा तु पातु मां कुलचण्डिका ॥1॥
शिरो मे ललिता देवी पातूग्राख्या कपोलकम् ।
ब्रह्मरन्ध्रेण पुटिता भ्रूमध्यं पातु मे सदा ॥2॥
नेत्रत्रयं महाकाली कालाग्निभक्षिका शिखां ।
दन्तावलीं विशालाक्षी ओष्ठमिष्टान्नवासिनी ॥3॥
कामबीजात्मिका विद्या अधरं पातु मे सदा ।
लृ युगस्था गण्डयुग्मं मायाबीजा रसप्रिया ॥4॥
भुवनेशी कर्णयुग्मं चिबुकं कनकेश्वरी ।
कपिला मे गलं पातु सर्वबीजस्वरूपिणी ॥5॥
मातृका वर्णपुटिता कुण्डली कण्ठमेव च ।
हृदयं कालपुत्री च कङ्काली पातु मे मुखम् ॥6॥
भुजयुग्मं चण्डदुर्गा चण्डदोर्दण्डखण्डिनी ।
स्कंधयुग्मं स्कन्दमाता कपोलं क्रोधकालिका ॥7॥

अंगुल्यग्रं कुलानन्दा श्रीविद्या नखमण्डलम् ।
कालिका भुवनेशानी पृष्ठदेशं सदाऽवतु ॥8॥
पार्श्वयुग्मं महावीरा वीरासन–धराऽभया ।
पातु मां कुलदर्भस्था, नाभिमुदरमम्बिका ॥9॥
कटिदेशं पृष्ठसंस्था महामहिषघातिनी ।
लिङ्गस्थानं महामुद्रा भगमाला मनुप्रिया ॥10॥
भगीरथप्रिया धूम्रा मूलाधारं गणेश्वरी ।
चतुर्दलं कामविद्या दलाग्रं मे वसुन्धरा ॥11॥
धीर्धरा धारणाख्या च ब्रह्माणी पातु मे मुखम् ।
मेदिनी पातु कमला वाग्देवी पूर्वगं दलम् ॥12॥
छेदिनी दक्षिणे पार्श्वे पातु चण्डा महातपा ।
चण्डघण्टा सदापातु योगिनी वारुणं दलम् ॥13॥
उत्तरस्थं दलं पातु पृथिवीमिन्द्र–लालिता ।
चतुष्कोणं कामविद्या ब्रह्मविद्याष्ट–कोणकम् ॥14॥
अष्टदलं सदापातु सर्ववाहनवाहना ।
चतुर्भुजा सदा पातु डाकिनी कुलचञ्चला ॥15॥
मेढ्रस्था मदनाधारा पातु मे चारुपङ्कजम् ।
स्वयम्भूलिङ्गं चार्वङ्गी कोटराक्षी ममासनम् ॥16॥
कदम्बं वनगा पातु कदम्बवनवासिनी ।
वैष्णवीं परमा माया पातु मे वैष्णवं पदम् ॥17॥
षड्दलं राकिणी पातु रङ्गिनी कामवासिनी ।
कामेश्वरी कामरूपा कृष्णं मे पीतवाससम् ॥18॥
धनुः सा वनदुर्गा मे शङ्खं मे शङ्खिनी शिवा ।
चक्रं चक्रेश्वरी पातु कमलाक्षी गदां मम ॥19॥
पद्मं मे पद्मगन्धा च पद्ममाला मनोहरा ।
बादिलान्ताक्षरं पातु लाकिनी लोकपावनी ॥20॥
षड्दले स्थित देवांश्च पातु कैलास–वासिनी ।
अग्निवर्णा सदा पातु गलं मे परमेश्वरी ॥21॥
मणिपूरं सदा पातु मणिमाला–विभूषणा ।
दशपत्रं दशवर्णं डादिफान्तं त्रिविक्रमा ॥22॥
पातु नीला महाकाली भद्रा भीमा सरस्वती ।
अयोध्यावासिनी देवी महापीठ – निवासिनी ॥23॥

वाग्भवाद्या महाविद्या कुण्डली कालरूपिणी ।
दशच्छदशतं पातु रुद्रं रुद्रात्मकं मम ॥24॥
सूक्ष्मा सूक्ष्मतरा पातु सूक्ष्मस्थाननिवासिनी ।
राकिनी लोकजननी पातु कूटाक्षरान्विता ॥25॥
तैजसं पातु नियतं रजकी राजपूजिता ।
विजया कुलवीजस्था तवर्गतिमिरापहा ॥26॥
चन्द्रात्मिका मणिग्रन्थिं भेदिनी पातु सर्वदा ।
भगमाला भृगुसुता पातु मां नाभिवासिनी ॥27॥
नन्दिनी पातु सकलं कुण्डली कालकल्पिता ।
हृत्पद्मं पातु कालाख्या धूम्रवर्णा मनोहरा ॥28॥
दलद्वादशवर्णं च भास्करी भाव सिद्धिदा ।
पातु मे परमा विद्या कवर्गं कामचारिणी ॥29॥
चवर्गं चारुरसना व्याघ्रास्या टङ्कधारिणी ।
टकारं पातु कृष्णाख्या हाकिनी पातु कालिका ॥30॥
ठंकुराङ्गी ठकारं मे बीजभाषा महोदया ।
ईश्वरं पातु विमला मम हृत् पद्मवासिनी ॥31॥
कर्णिकां कालसन्दर्भा योगिनी योगमातरं ।
इन्द्राणी वारुणी पातु कुलमाला कुलान्तरम् ॥32॥
तारिणी शक्तिमाता च कण्ठवाक्यं सदाऽवतु ।
विप्रचित्ता महोग्रोग्रा प्रभा दीप्ता घनाऽमला ॥33॥
वाक्स्तम्भिनी वज्रदेहा वैदेही वृषवाहिनी ।
उन्मत्तानन्दचित्ता च कुलेशी सा भगातुरा ॥34॥
मम षोडशपत्राणि पातु मातृतया स्थिता ।
सुरान् रक्षतु वेदज्ञा सर्वभाषा च कालिका ॥35॥
ईश्वरार्द्धासनगता प्रपायान्मे सदाशिवा ।
शाकम्भरी महामाया शाकिनी पातु सर्वदा ॥36॥
भवानी भवमाता च पायाद् भ्रूमध्यपङ्कजं ।
द्विदलं व्रतकामाख्या अष्टाङ्गसिद्धिदायिनी ॥37॥
पातु मामखिलानन्दा मनोरूपा जपप्रिया ।
लकारं लक्षणाक्रान्ता सर्वलक्षणलक्षणा ॥38॥
कृष्णाजिनधरा देवी क्षकारं पातु सर्वदा ।
द्विदलस्थं सर्वदेवं सदा पातु वरानना ॥39॥

बहुरूपा विश्वरूपा हाकिनी पातु चण्डिका ।
हरा परशिवं पातु मानसं पातु पञ्चमी ॥40॥
षट्चक्रस्था सदा पातु षट्चक्रकुलवासिनी ।
अकारादि क्षकारान्ता विन्दुसर्गसमन्विता ॥41॥
मातृकार्णा सदा पातु कुण्डली ज्ञानकुण्डली ।
पूर्णकाली गतिप्रेता पूर्णगिरितटं शिवा ॥42॥
उड्डीयानेश्वरी देवी सकलं पातु सर्वदा ।
कैलास पर्वतं पातु कैलासगिरि-वासिनी ॥43॥
डाकिनीराकिणीशक्तिर्लाकिनीकाकिनी कला।
शाकिनीहाकिनीदेवी षट्चक्रादीन् प्रपातु मे ॥44॥
कैलासाख्यं सदा पातु पञ्चानन-तनूद्भवा ।
हिरण्यवर्णा रजनी चन्द्रसूर्याग्नि-भक्षिणी ॥45॥
सहस्रदलपद्मं मे सदा पातु कुलाकुला ।
सहस्रदलपद्मस्था दैवतं पातु भैरवी ॥46॥
काली तारा षोडशाख्या मातङ्गी पद्मवासिनी ।
शशिकोटिगलद्रूपा पातु मे सकलां तनुम् ॥47॥
रणे घोरे जले दोषे युद्धे वादे श्मशानके ।
सर्वत्र गमने ज्ञाने सदा मां पातु शैलजा ॥48॥
पर्वते विविधावासे विनाशे पातु कुण्डली ।
पादादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वाकाशं सुरेश्वरी ॥49॥
सदा पातु सर्वविद्या सर्वज्ञानं सदा मम ।
नवलक्षमहाविद्या दशदिक्षु प्रपातुमाम् ॥50॥

फलश्रुतिः

इत्येतत् कवचं देव कुण्डलिन्याः प्रसिद्धिदं ।
ये पठन्ति ध्यानयोगे योगमार्गे व्यवस्थिताः ।
ते यान्ति मोक्षपदवीमैहिके नात्र संशयः ॥1॥

रुद्रयामले उत्तरखण्डे कन्दवासिनी कवचं सम्पूर्णम्॥

इस प्रकार कुण्डली जागरण हेतु यह कवच महत्त्वपूर्ण अनुभूत साधन है।

मयूरेश प्रकाशन, मदनगंज,
किशनगढ़ (अजमेर)

चिकित्सा में वैदिकमन्त्रप्रयोग का औचित्य

प्रवीण कुमार शर्मा

शोधसारांश—संस्कृत में चिकित्सा शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति से ज्ञानेच्छा, कालान्तर में दोषापहार, साहित्यशास्त्र के मत में संशय, आयुर्वेदमत से त्रिदोषसाम्य-प्रयत्न और आचार्य सुश्रुत के अनुसार भैषज्यकर्म है। रोगोत्पत्ति का कारण वातपित्तकफादि त्रिदोषवैषम्य, प्रकृतिजन्यप्रभाव (बाह्यान्तःप्रकृतिवैषम्य) एवं अन्तःबाह्य परिस्थितिजन्य मनोदौर्बल्य होते हैं। ब्रह्माण्डस्थ देवताओं का भी मानव पर प्रभाव पड़ता है। वेद-पुराण आदि ग्रन्थों के अनुसार त्राणधर्मी वेदमन्त्रों द्वारा आधि और व्याधि दोनों प्रकार के रोगों की चिकित्सा किया जाना सर्वथा सम्भव है। वेद मन्त्रों के जप से बाह्यप्रकृति व अन्तःप्रकृति के विकार विनष्ट होते हैं। प्रणवजप, गायत्रीमन्त्र जप, महामृत्युंजयमन्त्र जप व मानसिक-विकास से विविध शारीरिक व मानसिक रोग दूर होते हैं। मन्त्रजापक के लिए कतिपय नियम-पालन अपेक्षित होते हैं।

संकेताक्षर—किद्, स्वास्थ्य विघात, नादरूप, स्फुटतम, ब्रह्माण्डस्थ, पवित्रता।

'चिकित्सा' शब्द मूलभूतरूप से ज्ञानार्थक किद् धातु से इच्छार्थक सन् प्रत्यय व स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।[1] इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ तो ज्ञानेच्छा ही होता है, किन्तु कालान्तर में यह शब्द दोषापहार के लिए रूढ़ हो गया। साहित्यशास्त्रियों का मत है कि संशय अर्थ में विचिकित्सा शब्द प्राचीनकाल से प्रचलित था। संशयापहार के लिए चिकित्सा शब्द का प्रयोग साहित्य में कालिदासोत्तर काल में बहुलता से हुआ। आयुर्वेदशास्त्र में चिकित्सा शब्द का प्रयोग पुराणों में कथित होने से ग्रहण किया गया है।[2] शरीर में विद्यमान धातु मलादि जन्य दोषों के अपहार के लिए किया जाने वाला प्रयत्न ही चिकित्सा शब्द के द्वारा वाच्यता को प्राप्त हुआ। आचार्य सुश्रुत 'चिकित्सा' शब्द के अर्थ को भैषज्यकर्म के लिए निरूढ़ करते हैं। उन्होंने कहा है—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विचाराणां कर्म तद्भिषजां मतम्॥[3]

यहाँ भी आचार्यप्रवर के प्रतिपादन में दोषापहार रूप के अर्थ की ही प्रतिछाया ज्ञात होती है। आयुर्वेद के मत से धातुएँ ही रोग की उत्पत्ति में मूलरूप से कारण होती है। अतएव धातु-वैषम्य-विघात जिस उपाय से होवे, वह सब चिकित्सा शब्द के द्वारा जानना चाहिए। यहाँ पर आचार्य सुश्रुत के प्रख्यात टीकाकार मल्लारि सुश्रुत के अभिमत को स्पष्ट करते हैं—

"तत्र धातुवैषम्यविघातार्थं विधीयमानः क्रियाकलापः वृद्धानां धातूनां ह्रासकरणं क्षीणानां वर्धनं कठिनानां मृदूकरणं मृदूनां काठिन्यसम्पादनं संहतानां विलयनं, विलीनानां वा संहतीकरणं प्रवहतां स्तम्भनं स्तब्धानां वास्वेदनमित्यादि बहुविधः।"[4]

अर्थात् जहाँ धातु-विषमता-विघात के लिए विधीयमान क्रियाकलाप बढ़ी हुई धातु को कम करना, कम हुई धातु को बढ़ाना, कठिन हुई धातु को मृदु करना, मृदु हुई धातु का काठिन्य सम्पादन, संहत धातु का विलयन, विलीन धातु का संहतीकरण, बहती हुई धातु का स्तम्भन, स्तब्ध हुई धातु का स्वेदन इत्यादि बहुत प्रकार से होता है।

यहाँ विख्यात टीकाकार मल्लारि के मत में रोगापहार के उपायों का निर्देश विधान करके यह स्पष्ट किया गया है कि रोगापहार की समुचित प्रक्रिया का नाम 'चिकित्सा' है। यहाँ पर वेद-विज्ञान कुछ भिन्न एवं विशिष्ट दृष्टिकोण रखता है। उसके मत के अनुसार बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति के वैषम्य से ही स्वास्थ्य विघात होता है। वहाँ आधि और व्याधि इन दोनों प्रकारों में स्वास्थ्य विघात को विभाजित किया गया है।[5] मानस (मस्तिष्क) में निपतित बाह्य और अन्तः प्रकृति विकार प्रभावों की असह्यतावशाद् अनुभूत होने वाला उत्पीड़न विशेष 'आधि' कहलाता है। शरीर में निपतित बाह्य और अन्तः प्रकृति विकार प्रभावों की असह्यतावशाद् अनुभूत होने वाला उत्पीड़न विशेष 'व्याधि' कहलाता है।[6] इसी प्रकार रोग शब्द रुज् धातु से पुंल्लिङ्ग में घञ् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है जिसका अर्थ है रुजा, बीमारी, व्याधि, मनोव्यथा या आधि।[7]

महेश्वर अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता तथा 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' सामर्थ्य को विसंकुचित करके इस मानव शरीर में अल्पज्ञत्व तथा अल्पकर्तृत्व की सृष्टि करते हैं। जब वे परमशिव अपनी सामर्थ्य को विसंकुचित करते हैं, तो यह प्राणी सुख दुःख आदि के दृढ़ बन्धन में पड़ जाता है। इसी से प्राणी शारीरिक रोग, मानसिक रोग, अनेक प्रकार के शोक, मानसिक चिन्ता, सन्ताप तथा त्रिविध तापों से सन्तप्त और दुःखी एवं भयभीत होकर इन सबसे छुटकारा चाहने लगता है। पाप का फल ताप है, प्राणी के जन्म जन्मान्तर, युग युगान्तर, कल्प कल्पान्तर के किये हुए अशुभ कर्मों के फल ही इस जन्म में रोग के रूप में बाधा पहुँचाते हैं—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।

इसी से शास्त्रवेत्ता अमलात्मा परमहंस महापुरुषों ने नाना तरह के वैदिक मन्त्र साधनों के प्रयोगों को समाज के हितार्थ कल्पित किया है।

वेदविज्ञान में रोगों की उत्पत्ति में जो आधार ग्रहण किया गया है, वह प्रकृतिजन्य प्रभाव का परिणति रूप है, किन्तु आयुर्वेद में जो आधार ग्रहण किया गया है, वह शरीर में रहने वाले वात, पित्त, कफ आदि धातुमात्र का विकृति रूप है। इन दोनों में कुछ भेद विद्यमान है। वेदविज्ञान का यह भी अभिमत है कि जो मनन करने से जापक की त्राण(रक्षा) करते हैं वे मन्त्र कहलाते हैं। मन्त्र जप करने से रक्षण धर्म वाले होते हैं।[8]

सर्वदा सर्वथा वैदिक मन्त्रों का उपयोग मानव रक्षा के लिए ही होता है। अर्थात् मानव मन को मनन करने योग्य सामर्थ्य देकर जप से समग्र भयसमूह को नष्ट कर परिपूर्ण रक्षा प्रदान करने वाले विशिष्ट शब्द समूह को 'मन्त्र' नाम से अभिहित किया जाता है, इस शब्द पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि 'मन्' अर्थात् अक्षर समूह से चित्त का एकाग्र किया जाना तथा 'त्र' अक्षर से त्राण अर्थात् रक्षा किया जाना जिनका नैसर्गिक कर्त्तव्य है, तथा 'तज्जपस्तदर्थभावनम्'[9] महर्षि पतंजलि की इस उक्ति के अनुसार अर्थ भावना के साथ जो जप द्वारा अपेक्षित फल दे, वे 'मन्त्र' कहलाते हैं।

इस विश्व में नाम रूपमय नाना विषय इस प्राणी को अपने मोह पाश में बान्धते हैं। उस नाम रूपमय प्रकृति से यह प्राणी प्रायः अविद्या के बन्धन में पड़े रहते हैं, इसलिए निज सूक्ष्म प्रकृति तथा स्वभाव की गति के अनुसार नामात्मक शब्द व भावात्मक रूप के सहारे से जो साधन सम्पादित किया जाता है, वह कहलाता है मन्त्र साधन। रोगों से शरीर की रक्षा के लिए मन्त्रों के उपयोग के औचित्य को लक्ष्य में रखते हुए ही पुराणों में वैदिक मन्त्र चिकित्सा के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

मन्त्रों का प्रभाव दो प्रकार का होता है। सस्वर समुच्चरित नादरूप वेदध्वनि बाह्य प्रकृति के विकारों को दूर करती है। इसी प्रकार मन में उपांशुरूप से सस्वर समुच्चरित वेदध्वनि अन्तःप्रकृति के विकारों को दूर करती है।[10] यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि शरीरस्थ धातुओं का जो भी क्रियान्वयन होता है, वह सब मन के ही अधीन होता है। मन की अवस्था सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करती है और मन अन्तः तथा बाह्य स्थितियों के अनुसार प्रभावित होता रहता है। इसलिए मन की शक्तियों का मजबूत और विकसित होना आवश्यक है। वैदिक मंत्र विज्ञान मन की शक्तियों के ही चहुँमुखी विकास का विज्ञान है। जब मानव मनोदौर्बल्य को प्राप्त होता है, तभी धातुएँ प्रकुपित होती हैं। व्यवहार में भी देखा जाता है कि निरन्तर चिन्ता के वशीभूत स्वस्थ प्राणी भी रुग्ण हो जाता है और जो मनोदौर्बल्य से ग्रस्त नहीं है वह मनुष्य रोगी होते हुए भी शीघ्र स्वास्थ्य लाभकर लेता है। अतः मनः तत्त्व ही चिकित्सा के लिए चिन्तनीय है, ऐसा वैदिक लोग मानते हैं।[11]

वेदों में 'शिवसंकल्पसूक्त' आदि में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' इत्यादि की जो उदात्त भावना अभिव्यक्त की गई है, वह वस्तुतः चिकित्सा के मूल में विद्यमान इसके रहस्य से ही स्फुटतम अभिव्यक्त होती है। शिवसंकल्पसूक्त में मन्त्र द्रष्टा ऋषि ने अपने मन के शिव संकल्प होने की कामना की है तथा मन में कभी किसी प्रकार की कोई व्यग्रता न आवे। मन हमेशा स्वस्थ एवं शान्तचित्त बना रहे। हमारे वेदों में मन की तनाव पूर्ण स्थिति को हटाने के अचूक उपाय दिए गए हैं। पारस्परिक वैर भाव को त्याग कर सहृदय, मनस्वी तथा उत्तम स्वभाव वाले बनने के लिए तथा एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखने को प्रेरित किया गया है ताकि हम लोग सब सुखी हो सकें—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥[12]

इसी प्रकार तनावपूर्ण मानसिक स्थितियों से बचने के लिए हमें भूत भविष्य और वर्तमान में कभी किसी से भी वैर नहीं करने की प्रेरणा भी वेदों में प्रदान की गई है—

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि॥[13]

अतएव वेद में जहाँ भी स्वास्थ्य लाभ के लिए चिन्तन किया गया है वहाँ पंचमहाभूतों के सदुपयोगपूर्वक मन के ही केन्द्रीकरण के उपाय रूप से प्रतिपादन हुआ है। 'अपदेव्या.' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल के विविध प्रयोगों के द्वारा रोग विशेष के अपहार के उल्लेख वेदों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं।[14] इसी प्रकार वायु देवता के मन्त्रोच्चारण के साथ प्राणायाम विशेषों के उपयोग के उल्लेख भी वेदों में प्राप्त होते हैं।

चारों वेदों का सारसर्वस्व गायत्री मन्त्र है, गायत्री मन्त्र का सारसर्वस्व महाव्याहृतियाँ हैं तथा महाव्याहृतियों का भी सारसर्वस्व वेदविद्या का मूलाधाररूप प्रणव (ओंकार) है। सबसे पहले ईश्वर के वाचक[15] प्रणव की साधना करना ही जापक के लिए श्रेयस्कर है। इसी प्रकार विश्वप्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र की उपासना से भी अनेक अशान्त, उद्विग्न, मनोरोग से ग्रस्त रोगियों के सर्वविध कष्ट समाप्त हुए हैं तथा उन्हें सुख, शान्ति, प्रसन्नता, निर्भयता प्राप्त हुई है। जो गाने वाले अर्थात् जपने वाले की रक्षा करे उसे गायत्री कहते हैं—**गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन कीर्तिता।**[16] *महाभारत* में वर्णन मिलता है कि आकाश के सूर्य आदि ग्रहों में से जो कोई भी ग्रह मनुष्य के लिए रोगप्रद होते हैं वे गायत्री जप के प्रभाव से उसके लिए सदा सौम्य, सुखद एवं मंगलकारी हो जाते हैं।[17] यह मन्त्रसाधन प्रणाली वैदिक काल से प्रचलित है। प्राचीनकाल से अद्यावधिपर्यन्त हजारों लाखों आधि व्याधिग्रस्त मनुष्यों ने रोग निवारक बहुप्रचलित विश्वविश्रुत प्रसिद्ध 'महामृत्युंजय' नामक वेदमन्त्र के विधिपूर्वक प्रयोग से न केवल आधि व्याधि दूर की है, अपितु शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ एवं दीर्घायु भी प्राप्त की है।

अथर्ववेद में तो यह भी कहा गया है कि सभी देवता पिण्ड और ब्रह्माण्ड इन दोनों जगह रहते हैं—**'यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः।'**[18] देवताओं की संस्थिति ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड में उभय प्रकार से होती है। खगोलीय पिण्डों के प्रभाव के द्वारा पार्थिव पिण्डस्थ देवताओं के विचलन से ही रोगादि का प्रादुर्भाव होता है। यदि ब्रह्माण्डस्थ देवताओं की शक्ति पार्थिव पिण्डों में विद्यमान देवताओं का विचलन नहीं कर सके तब रोगों का अवरोध अवश्य होता है। अतएव वेदमन्त्र ही उस प्रकार की शक्ति से सम्पन्न हैं जिससे वे ब्रह्माण्डस्थ देवशक्ति को प्रबल करने में समर्थ सिद्ध होते हैं।

वेदमन्त्रों के चिकित्सा क्षेत्र में उपयोग के लिए प्रयोगकर्त्ता में सात्त्विकी वृत्ति, पवित्रता, शुद्ध उच्चारण, मन्त्रों के ऋषि, छन्द तथा देवताओं का परिज्ञान, जप आदिविधियों में दक्षता,यज्ञ प्रक्रिया का समुचित ज्ञान ये सब अपेक्षित होते हैं। महर्षि यास्क ने *निरुक्त* प्रथम अध्याय के अन्त में मन्त्रार्थ ज्ञान को परम आवश्यक माना

है, इसलिए मन्त्र अर्थबोध पूर्वक जप होम करना श्रेयस्कर होता है। निरुक्तकार ने लिखा है—'**स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।**' अर्थात् जिसने वेद का अध्ययन करने पर भी उसका अर्थ नहीं समझा वह उस बोझा ढोने वाले के समान है, जो भार तो वहन करता है किन्तु इस भार में क्या वस्तु है? यह नहीं जानता। इसलिए उपर्युक्त सभी के बिना कोई भी प्रयोगकर्त्ता इस क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है। देवगण जाग्रत् के ही जीवन की कामना करते हैं इसलिए वे प्रमाद नहीं चाहते। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है—

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥[19]

देवताओं का पुनः वेदों में यह भी वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है कि वे यज्ञ की कामना करने वाले होते हैं। यज्ञरूपकर्म का फल प्रदान करना उनके अधीन होता है। उसके माध्यम से जीवनदान तो उनके द्वारा संकल्पित ही है।जैसा कि *ऋग्वेद* तथा *यजुर्वेद* में कहा गया है–

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवाना सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥[20]

अर्थात् देवों का समुदाय दीर्घकाल तक जीवन के लिए हमारी आयु को संवर्द्धित करें। इसी तरह अथर्ववेद के 'निर्भयता सूक्त' में प्रतिपादित किया गया है कि जिस प्रकार द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात, सूर्य, चन्द्रमा, ज्ञान, शौर्य, सत्य, अनृत, अतीत, अनागत ये सभी किसी से भी नहीं डरते उसी प्रकार हे मेरे प्राण तुम भी किसी से मत डरो।[21] इस प्रकार से अलौकिक दिव्य शक्ति सम्पन्न वेदमन्त्रों के द्वारा रोग पीड़ित मानव जाति के स्वास्थ्य लाभ के लिए विविध आधि व्याधि निवारण के विशिष्ट प्रयोग वेद पुराण आदि ग्रन्थों में तथा भिन्न भिन्न वेदों के भिन्न भिन्न विधान ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।

सन्दर्भ

1. गुप्तिज्किद्भ्यः सन्, अजाद्यतष्टाप् (*पाणिनीय अष्टाध्यायी*)
2. *सुश्रुतसंहिता* मल्लारिकृत टीका, पृ. 68
3. *सुश्रुतसंहिता*, पृ. 34
4. *सुश्रुतसंहिता* मल्लारिकृत टीका, पृ. 133
5. *वेदविज्ञानामृतम्*, पृ. 219
6. *वेदविज्ञानामृतम्*, पृ. 222
7. *संस्कृत हिन्दी कोश*— वामन शिवराम आप्टे, पृ. 862

8. *वैदिकमन्त्र विज्ञान*, पृ. 3
9. *पातंजलयोगसूत्रम्,* 1/28
10. *वैदिकमन्त्र विज्ञान*, पृ. 16
11. *स्वास्थ्यप्रदीप,* पृ. 36-37
12. *अथर्ववेद*, 3/30/1
13. *अथर्ववेद,* 6/40/3
14. *स्वास्थ्यप्रदीप,* पृ. 47
15. तस्य वाचक: प्रणव:। (*पातंजलयोगसूत्रम्*, 1/27)
16. *गायत्रीतन्त्रम्।*
17. *महाभारत*, वनपर्व, 200/85
18. *अथर्ववेद*, 10/7
19. *ऋग्वेद*, 10/10/7
20. *ऋग्वेद*, 1/89/2, *यजुर्वेद*, 25/15
21. *अथर्ववेद*, 2/25-1-6

प्रवीण कुमार,
56, राधाबाग कॉलोनी, चौमूँ (जयपुर)
(शोधछात्र, संस्कृत विभाग)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
मो. 09928867024

कुण्डलिनी योग की जागरण–साधनाएँ

कजोड़मल मीना

योग शब्द संस्कृत के युज धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है जोड़ना। किसी वस्तु को अपने में जोड़ना अर्थात् किसी अच्छे कार्य में अपने को लगाना। कार्य शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक इत्यादि विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। मन से तथा शरीर से व आत्मा से तथा बुद्धि से जो सम्यक् कार्य किया जायेगा उसे ही योग कहते हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। — *पतञ्जलियोगदर्शन, 1–2*

चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है।

"सफलता व असफलता दोनों को समान भाव से देखना ही योग है।"

योग कर्मसु कौशलम् कर्मों के कारण जो कुशलता है उसी को योग कहते हैं।

"संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम ही योग है।" — *योगवसिष्ठ*

यम–नियमासन–प्राणायामा–प्रत्याहार–धारणा
ध्यान–समाधयः अष्टौ अङ्गानि। (2–29)

— *साधनपाद पातञ्जल योगदर्शन।*

महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अंग बताये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि।

आत्मा और परमात्मा की मिलन प्रक्रिया को सम्पन्न करने की विधि व्यवस्था को योग कहा जाता है। योगसाधना का एक पहलू यह भी है कि भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों की समन्वयात्मक उपलब्धि का मार्ग प्राप्त करना। यह जीवन भौतिक और आत्मिक दोनों ही तत्त्वों से मिलकर बना है। दोनों से मिल–जुल कर ही जीवन क्रम चला आ रहा है। अतः प्रगति के लिये दोनों ही पक्ष जरूरी है। योग के साधनात्मक पक्ष के दो पहलू हैं। एक को निगम कहते हैं तथा दूसरे को आगम कहते हैं तथा इसी प्रकार एक को दक्षिणमार्ग तथा दूसरे को वाममार्ग भी कहा जाता है। इन्हीं को तन्त्र और योग भी कहा जाता है।

तन्त्र पक्ष का मानना है कि शरीर और मन में शक्ति–तत्त्व भरा पड़ा है और साधना के द्वारा उसी का जागरण और विकास करके साधक अपनी भौतिक सामर्थ्य बढ़ा सकता है। दक्षिणमार्गी पक्ष का मानना है कि

भौतिक प्रगति की अपेक्षा आत्मिक प्रगति मूल है। कुण्डलिनी योग के अनुसार इस शरीर में दो केन्द्र, दो शक्तियों के प्रतीक स्थल हैं। एक प्रकृति का दूसरा परमेश्वर का, एक जीव का, दूसरा आत्मा का। इन स्थलों में से एक को महासर्पिणी कहते हैं, दूसरे को महासर्प। वस्तुत: यह दो पृथक् सत्तायें नहीं हैं, प्रत्युत एक ही शक्ति के दो सिरे हैं।

कुण्डलिनी

संस्कृत में 'कुण्डल' का अर्थ होता है—घेरा बनाए हुए 'कुण्डलिनी' शब्द कुण्ड से बना है जिसका अर्थ होता है—वह खोखला गड्ढा जिसमें मस्तिष्क की स्थिति कुण्डली मार कर सोये हुए सर्प की भाँति है। यही कुण्डलिनी का वास्तविक अर्थ है। 'कुण्डलिनी' शब्द का तात्पर्य उस शक्ति से है जो गुप्त एवं निष्क्रिय अवस्था में हैं। किन्तु शक्ति के प्रकट होने पर अपनी अनुभूति के आधार पर उसे देवी काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी या अन्य किसी नाम से जाना जाता हैं। कुण्डलिनी स्वर्ण समान प्रचण्ड आभा वाली महाशक्ति है। कुण्डलिनी निर्भयता प्रदान करने वाली है, वही वैष्णवी है। सतो, रज, तम तत्त्वों को उत्पन्न करने वाली है। मूलाधार के मध्य में आत्म तेज-रूपी अग्निपुञ्ज होकर विराजमान जीवनी-शक्ति है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक '*राजयोग*' में लिखा है कि "वह केन्द्र जहाँ समस्त अवशिष्ट संवेदनायें (रेजिडुअल सन्सेशन्स) संचित संगृहीत हैं, मूलाधार चक्र कहलाता है, वहाँ एक कुण्डलिनी क्रिया-शक्ति (क्वाइल्डअप एनर्जी आफ एकसन्स) को कुण्डलिनी कहा जाता है।

कुण्डलिनी साधना की पृष्ठभूमि

कुण्डलिनी को सचेतन शक्ति कहते हैं जो बिजली की दो धाराएँ हैं। एक जो जड़ पदार्थों में काम करती हैं, दूसरी जो जीवित शरीरधारियों में काम करती है। इसलिए एक भौतिक, दूसरी को आत्मिक कहा जा सकता है। कुण्डलिनी साधना के लिए लम्बे समय तक श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक अनवरत अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है।

कुण्डलिनी जागरण की फलश्रुतियाँ

इस साधना की सफलता से साधक के अनेक प्रकार की दिव्य क्षमताएँ विकसित होती हैं। इससे निर्भयता प्राप्त होती है। इसके द्वारा शरीर में एक ऐसी शक्ति का आविर्भाव होता है, जिससे मनुष्य की चैतन्य शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है और वह जब चाहे तब स्थूल संसार से सूक्ष्म जगत् की स्थिति का अनुभव कर सकता है। यह मनुष्य को सब प्रकार की शक्तियाँ, विद्या और अन्त में मुक्ति प्राप्त करने का साधन होती है। यह आन्तरिक आत्मिक शक्तियों को प्रसुप्त से जागृति में बदलने में तथा जागृति को प्रचण्ड बनाने में सहायक होती है।

कुण्डलिनी को कौन जगा सकता है

जो साधक कुण्डलिनी योग में पूर्ण सफलता प्राप्त करके उस पर पूरा अधिकार और नियंत्रण कर सकने की क्षमता रखता है उसी को यह साधना करनी चाहिए। साधक का रहन-सहन, पूर्ण संयमयुक्त और सात्त्विक होना चाहिए। साधक मन, शरीरको नियमित अभ्यास द्वारा सुदृढ़ और सहनशील बनाये। केवल साधु-सन्त ही नहीं प्रत्युत कवि, चित्रकार, योद्धा, लेखक अथवा कोई भी व्यक्ति अपनी कुण्डली को जगा सकता है। साधक के आचार-विचार और उद्देश्य पूर्णत: शुद्ध होने चाहिए।

कुण्डलिनी जागरण की पूर्व तैयारी

कुण्डलिनी जागरण के लिए निम्नलिखित उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है—

1. संकल्प, 2. साहस, 3. प्राण, 4. संयम, 5. धैर्य, 6. तत्परता, 7. तन्मयता।

इन सातों का संकलन कर लेना एक प्रकार से आत्म-विजय करना है। जिसने अपने को जीत लिया, उसके लिये अन्य किसी को जीत लेना सरल है।

पञ्चकोशों की संक्षिप्त साधनाएँ

इस साधना क्रम में—(1) वज्रासन, (2) उन्मनी मुद्रा, (3) प्राणाकर्षण प्राणायाम, (4) पाँच प्रणवयुक्त गायत्री मंत्र का जाप, (5) देवात्म-शक्ति का ध्यान करना, साधक के लिए हितकर होता है।

कुण्डलिनी जागरण प्रकरण

कुण्डलिनी का (1) संयम, (2) जागरण, (3) उद्दीपन—यह तीनों थोड़े कठिन तो जरूर हैं पर साहस धैर्य एवं अभ्यास से सफलता प्राप्त होगी। कुण्डलिनी जागरण एक प्रकार की अग्नि परीक्षा है। कुण्डलिनी जागरण का सार-संक्षेप यह है कि निखिल ब्रह्माण्ड में से प्राण चेतना को आकर्षित करके अपने निज प्राण में उस महत् चेतना की बड़ी मात्रा मिलाकर उच्चस्तरीय शक्ति प्राप्त की जाये और इस सामर्थ्य को अभीष्ट सत्प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त करने योग्य अभ्यास करें।

प्रारम्भिक कुण्डलिनी साधना

इस साधना क्रम में—(1) सिद्धासन, (2) शक्तिचालिनी मुद्रा, (3) अलोम-विलोम प्राणायाम अर्थात् नाड़ी-शोधन प्राणायाम, (4) तीन बीजयुक्त गायत्री मंत्र का जप, (5) कुण्डलिनी ऊर्जा-मन्थन एवं उन्मन का ध्यान।

विशिष्ट कुण्डलिनी साधना

मानव शरीर में अनेक मर्म स्थान ऐसे हैं जिनका महत्त्व वैज्ञानिक दृष्टि एवं आध्यात्मिक दृष्टि से असाधारण है। ऐसे मर्म स्थलों में मेरुदण्ड शरीर का प्रमुख स्थान हैं। यह शरीर आधार-शिला है।

शरीर बाहर से एक दिखते हुए भी सन्तरे के भीतर पाये जाने वाले स्वतंत्र घटकों की तरह सात शरीर पाये जाते हैं। ये सात अन्त:शरीर निम्नलिखित हैं—

(1) अस्थि शरीर (Bone Body)

(2) मांस शरीर (Muscles Body)

(3) नाड़ी शरीर (Nerves Body)

(4) संचरण शरीर (Circulatory Body)

(5) लसीका शरीर (Lympnatic Body)

(6) नलिकाकार शरीर (Tubular Body)

(7) चर्म शरीर (Skin Body)

इनमें से प्रत्येक शरीर समग्र-शरीर रचना में अपना अनोखा योगदान देता है। इन सात शरीरों के भी सूक्ष्म शक्ति केन्द्र हैं। इन्हें षट्चक्र और सातवाँ सहस्र दल कमल या ब्रह्मरन्ध्र है।

कुण्डलिनी के षट्चक्र और उनका भेदन

कुण्डलिनी साधना को अनेक स्थानों पर षट्चक्र भेदन की साधना भी कहते हैं। आत्मोत्कर्ष की महायात्रा जिस राजमार्ग से होती है उसे मेरुदण्ड या सुषुम्ना कहते हैं। उसका एक सिरा मस्तिष्क तथा दूसरा सिरा काम केन्द्र को स्पर्श करता है। मेरुदण्ड को राजमार्ग या महामार्ग कहते हैं। इसे धरती से स्वर्ग तक का देवयान-मार्ग भी कहा गया है। इस यात्रा के मध्य में सात लोक हैं। आत्मा और परमात्मा के मध्य इन्हें विराम स्थल माना गया है। इन विराम स्थलों को चक्र कहा गया है।

ध्यान द्वारा चक्रों का भेदन

चक्रों का भेदन ध्यान शक्ति के द्वारा किया जाता है। ध्यान एक ऐसा सूक्ष्म विज्ञान है जिसके द्वारा मन की बिखरी हुई बहुमुखी शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर एक कार्य में लगती हैं। ध्यान द्वारा मन: क्षेत्र की केन्द्रीभूत से षट्चक्रों का भेदन किया जा सकता है। ध्यान पूर्ण विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा और उचित पथ-प्रदर्शक की संरक्षता में किया जाये।

साधकों को एक बात विशेष तौर पर याद रखना चाहिए कि साधना काल में ब्रह्मचर्य से रहना, एक बार भोजन करना, सात्त्विक खाद्य-पदार्थ ही ग्रहण करना, एकान्तवास सेवन करना, स्वास्थ्यवर्धक वातावरण में रहना, दिन-चर्या को ठीक रखना अनिवार्य है। यह साधना की प्रारम्भिक शर्ते मानी गई हैं क्योंकि षट्चक्रों के

भेदन और कुण्डलिनी जागरण से ब्रह्मरन्ध्र में ईश्वरीय दिव्यज्योति के दर्शन होते हैं और अनेकों गुप्त-सिद्धियाँ उन्हीं को प्राप्त होती हैं जो मन, वचन एवं कर्मों में पवित्र है।

कुण्डलिनी जागरण की ध्यान धारणा विधि

कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया में विभिन्न चक्रों पर क्रमश: ध्यान केन्द्रित करना होता हैं। ये चक्रों का क्रम निम्नलिखित हैं—

1. मूलाधार चक्र (पेल्विक पलेक्सस)
2. स्वाधिष्ठान चक्र (हाइपोगेस्टिक प्लैक्सस)
3. मणिपुर चक्र (एपिगैस्ट्रिक सोलर प्लैक्सस)
4. अनाहत चक्र (कार्डिएक प्लैक्सस)
5. विशुद्धि चक्र
6. आज्ञा चक्र
7. सहस्रार चक्र।

उपर्युक्त चक्रों का ध्यान योगनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के सांनिध्य में साधक द्वारा होना चाहिए। वह कठोर परिश्रम द्वारा नित्य निरन्तर सतत ध्यान से कुण्डलिनी शक्ति की साधना करके अपनी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् कर सकते हैं एवं अनन्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सुर दुर्लभ मानव योनि को अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त करके सार्थक कर सकते हैं।

योगसाधनाएँ अनेक हैं—इसका कारण यह है कि मनोभूमि की स्थिति, शक्ति सुविधा, रुचि, देश-काल, पात्र के भेद से भिन्न-भिन्न परिस्थिति के लोग उन्हें अपना सके। युग-परिवर्तन के अनुसार तत्त्वों की स्थिति में भी अन्तर आता रहता है। पूर्वकाल में जलवायु में जो गुण था वह अब नहीं है और जो अब है वह आगे नहीं रहेगा। सृष्टि धीरे-धीरे बूढ़ी होती जाती है। अत: युग की स्थिति के अनुसार साधना का मार्ग और परिणाम बदल जाता है इसलिए साधना क्रमों की व्यवस्था और विधि-विधान में अन्तर पड़ जाता है।

शोधछात्र, योग,
महात्मा ज्योतिबा फुले विश्वविद्यालय,
जयपुर।
मो. 9414716975

कालकलादेव्याः पूजनप्रकारः

कमलनयनशर्मा

अस्माकं सनातनधर्मस्य परमं मूलं वेदाः। तथा च मनुः **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**।[१] गौतमोऽपि 'ॐ वेदो धर्ममूलम्'।[२] मूलमत्र प्रमाणवचनः। वैदिकपद्धत्या एवेन्द्रप्रभृतीनां देवानामुपासनमासीद्विहितम्। तेषामुपासनस्योद्देश्यमपि पृथक्-पृथक् आसीत्। वेदानामियत्ता नास्ति, यथा ब्रह्मणः, तेषामपि तन्निःश्वासारूपत्वात्। तथा चोक्तम्—'तस्य वा महतो भूतस्य यन्निःश्वसितं तद्वेदाः।'[३] अतएव 'अनन्ता वै वेदाः' इत्यपि। तदनन्तरमेव वेदान्तशब्दप्रतिपाद्यानामुपनिषदां स्थानम्। तत्राप्युपासनाविधानम्। तत्रापि शैववैष्णव-शाक्तभेदाः वर्त्तन्ते, उपासकानां रुचिभेदात्। यद्यपि सनातनधर्मस्य पञ्च स्कन्धा विद्यन्ते—शैव-विष्णु-शाक्त-सौर-गाणपत्यभेदात्, तथापि शैवादित्रयाणां प्रचारबाहुल्यं दृश्यते।

उपासनादृष्ट्या तदनन्तरमागमानां स्थानम्। आगमा अपि भेदत्रयभिन्नाः सन्ति। सर्वेषाञ्चाधिकारिभेदात् महत्त्वं वर्त्तते। आगमग्रन्थेषु तत्तद्देवानां विविधप्रकारेण विविधफलाय चोपासना विहिता वर्त्तते। समेषामागमानां वक्ता भगवाञ्शिव एव, श्रोत्री च भगवती भवानी (पार्वती)। तयोर्मध्ये एव प्रश्नोत्तररूपेण विद्यमानत्वात्तेषाम्। अतएव तत्र कालविचारोऽपि न रोचते। वक्तुः कालसमकाल एव कालस्तेषाम्। तत्र नान्यप्रमाणस्यावश्यकता। यथासमयमेतानि शास्त्राणि प्रादुर्भवन्ति तिरोभवन्ति च। अतएवागमशब्दमपि परिभाषयन्ति—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजामुखे।
मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।।[४]

तत्र शक्तेरूपा काः शाक्ताः कथ्यन्ते। शक्तिदेवतास्येति विग्रहे 'साऽस्य देवता'[५] इति पाणिनिसूत्रेणाण्।

तन्त्रोक्तशक्तिदेवतोपासकानां महत्त्वमपि प्रतिपादितं दृश्यते, यथा—

स्वर्ग मर्त्ये च पाताले नास्ति शाक्तात्परः प्रियः।[६]
सौराणां गाणपत्यानां वैष्णवानां तथैव च।।
शैवान्ते चैव शाक्तश्च क्रमशः क्रमशः प्रिये।।
शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवाः न च वैष्णवाः।[७]

उपासते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षराम्।।
अस्याराधनं कृत्वा नान्यस्याराधनं चरेत्।[८]
अन्यस्य स्मरणाद् देवि! योगिनीशापमालभेत्।।

अस्योपासनस्य महद्वैशिष्ट्यमपि वर्त्तते, कुशस्थाने न वनसम्भवकुशानां ग्रहणम्। तथा च दर्भविधानम्[९]—

तर्जन्या रजतं धार्यं स्वर्णं धार्यमनामया।
एष एव कुशः शाक्तो न दर्भो वनसम्भवः।।

वर्त्मद्वयं भगवतैव दर्शितम्—

वेदाविरुद्धं कुर्वन्ति यद् यदागमचेष्टितम्।[१०]
आगमादेशितमपि जहति श्रुत्यचोदितम्।।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च।[११]
उभयं कुर्वते देवि! मदुदीरितवेदिनः।।

दशसंख्याकानां महाविद्यानामुपासना जायते, ताश्च—काली-तारा-त्रिपुरसुन्दरी-भुवनेश्वरी-मातङ्गी-भैरवी-छिन्नमस्ता-बगुलामुखी-धूमावती तथा कमला। तत्राप्युपासना भेदादवान्तर भेदाः सञ्जायन्ते, यथा—**काली नवविद्या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता।**[१२] ताश्च दक्षिणकाली-भद्रकाली-श्मशानकाली-कालकाली-गुह्यकाली-कामकलाकाली-धनकाली-सिद्धिकाली-चण्डकाली। एवमेव—

यथात्रिभेदा तारा स्यात् सुन्दरीं सप्तसप्ततिः।[१३] तान्त्रिकपूजापद्धते सविस्तरं वर्णनं *गुह्यकालीखण्डे* वर्त्तते। यथा—साधकसामान्यकृत्यम्, मन्त्रोपमन्त्राणां स्वरूपं माहात्म्यञ्च, यन्त्रम्, तान्त्रिकगायत्री, षडङ्गन्यासः, साधारणन्यासः, षोढान्यासः, लघुषोढा-महाषोढा च। बाह्यपूजनस्वेरनेके भेदाः, यथा—नित्य-नैमित्तिक-काम्य-शारदी-वासन्ती-बिन्दु-आवरणशक्ति, कुमारी आदि। शिवाबलि। विविधोपचाराः, यथा—पञ्चोपचार-दशोपचार-षोडशोपचार, राजोपचार आदिः। मानसपूजा, योगः, ध्यानम्, कवचम्, स्तोत्रम्, सहस्रनाम, पवित्रारोपणम्, दमनारोपणम्। एवमेवोपासना-सम्प्रदायानामपि वर्णनं विद्यते।

कामकलापूजनेऽपि क्वचिद् गुह्यकालीवत्पूजनं वर्त्तते विहितम्, यथा—

क्वचिच्च गुह्यकालीवत् क्वचिद् दक्षिणकालीवत्।[१४]
न्यासपूजादिकं सर्वं विशेषः कुत्रचित्प्रिये।।

नोभयोर्भेदोऽपि त्वैक्यमेव बोध्यम्। तथा चोक्तम्—

या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा।[१५]
मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत्कामकलात्मिका।।

न्यासप्रसङ्गे षोढान्यासा:, यथा—नृसिंहन्यास:-भैरवन्यास:-कामकलान्यास:-डाकिनीन्यास:-शक्तिन्यासस्तथा देवीन्यास:।

प्रसङ्गेत्र कामकालिकप्रयोगं किञ्चिद्वर्णयामि, यथा तत्र *महाकालसंहिताया: कामकलाखण्डस्य पञ्चमे पटले* विवृतम्। भगवतीदेवी च ब्रह्मस्वरूपा निर्गुणा, निराकारा, चिन्मयी, पराशक्तिर्वर्तते। कामकालिकप्रयोगवशादेव कामकलेत्यभिधानम्। भगवती पार्वती महाकालं पृच्छति-सा पराशक्ति: कामकलेत्यभिधानं कथं प्राप्तवती। तदनन्तरं भगवान् महाकालोऽस्यात्यन्तगोपनीयत्वप्रतिपादनपूर्वकं कथयति। गोपनीयता या महत्त्वमने-नैव प्रतिपादितं भवति—प्राणात्ययेनापि[१६] पुनर्न वाच्यं यत्र कुत्रचित्। एवमेव महत्त्वमपि तत्रैव दृश्यते, यथा— **स्मरणादस्य योगस्य प्रसन्ना कालिका भवेत्।** एवमप्युक्तवान्, कदापि अवहेला न कार्या।

अवहेला न कर्त्तव्या न जुगुप्सा कदाचन।[१७]
न निन्दा न परीवादो न द्वेषो नैव धिक्कृति:।।

निन्दादि कृते च किं भविष्यति। तदप्युक्तम्—

कृते तु सर्वनाश: स्यान्मरणं रोगपूर्णता।[१८]
दारिद्र्यं पुत्रनाशश्च बन्धनं निगडादिभि:।।

प्रयोगत्रैविध्यमपि दर्शितम्, यथा—

राजपूर्वस्य मध्यपूर्वो लघुपूर्वस्तथैव च।[१९]

राजपूर्वस्य कामकलानामकप्रयोगस्याभिधानं प्रथमं करोति, यथा—अत्र षट्त्रिंशत्परिमितानां सकलसौन्दर्यगुणसम्पन्नां विभिन्नजातीयानां युवतीनां विहितविधया पूजा भवन्ति। ताश्च 'रामा: षोडशवर्षीया:' इत्यारभ्य 'चाण्डाली राजकन्या येत्यन्तं निर्दिष्टा: सन्ति। प्रथमं तासां स्वस्य पश्चाच्च जात्यादीनां वर्णनम्।' एतेसां पुष्पादिवासिततैलेनाभ्यञ्जनम्। ततश्च प्रसाधनम्। तदनन्तरं कर्पूरवासितजलेन स्नपनं क्रियते। तत्र मन्त्रौच्चारणमपि कार्यम्। मन्त्रो यथा— ओं श्रीं क्लीं भगवति महामाये अनङ्गवेगसाहसिनि सर्वजनमनोहारिणि सर्ववशंकरि मोदय मोदय प्रमोदय प्रमोदय एह्येहि आगच्छ आगच्छ कामकलाकालि सान्निध्यं कुरु कुरु हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा। मन्त्रस्यास्य वर्णन[२०] संहितायामेव वर्तते। मन्त्रोद्धारश्च कृतो वर्त्तते विद्वद्वरेण्येन डॉ. किशोरनाथ झा महोदयेन। तदनन्तरं समन्त्रकं वस्त्रैर्दानम्।[२१] मन्त्रस्वरूपश्च—ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं स्त्रीं स्त्रीं त्रैलोक्याकर्षिणि वस्त्रं गृह्ण गृह्ण फट् स्वाहा। ततश्च कज्जलापर्ण[२२] कुर्यात्। तत्र[२३] मन्त्र:—ओं हूँ महाघोरतरे फेत्कारराविणि महामांसप्रिये हिलि हिलि मिलि मिलि कज्जलं ग्रह्ण ग्रह्ण ठ: ठ:। ततश्चैतासां सिन्दूरार्पणं कुर्यात्। तत्र[२४] मन्त्र:—'ओं आं स्त्रीं क्लीं ह्रीं' इत्यारभ्य ऐं ऐं ऐं फट् ठ: ठ:। तदनन्तरं मलक्तकापर्णम्। तत्र मन्त्रे—क्लीं क्लीं इत्यारभ्य निवेदयामि नम: स्वाहा। पूजागृहे च मण्डलनिर्माणं कुर्यात्। तस्यां वाचनस्य[२५] विस्तृतं विवेचनं वर्तते। मण्डलोपरि तासमुपवेशनं[२६] कार्यम्। ततश्च मूलदेव्या[२७] आवाहनम्। तदनन्तरं प्रयौगोर्थमनुज्ञाप्रार्थना।[२८]

ततश्च सुन्दरीणां[२९] सोपचारपूजा कर्त्तव्या। पूज्यायां जातिहीनेति स्मृत्वा अवज्ञा न कर्त्तव्या। तथा चोक्तम्—

देवीधिया प्रपश्येत्ता इत्यागमविदो विदुः।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः गन्धपुष्पादिभिस्तथा।
धूपदीपैश्च नैवेद्यैरन्यद् यच्चोपकल्पितम्।।

पूजा सन्तोषजनिका कार्या। ततश्च यथाविहितं पीठन्यासं[३०] कुर्वीत। ततश्चात्मनि[३१] इष्टदेवतां ध्यायेत्। इष्टदेवतायाः[३२] मानसपूजां सम्पाद्य बाह्यपूजामपि कुर्यात्। मधुपर्केणापि पूजयेत्। मधुपर्कस्वरूपञ्च, यथा—

दध्ना[३३] च मधुसर्षिभ्यां मधुपर्का भविष्यति।

इष्टदेवतायाः बाह्यपूजामपि विदध्यात्। प्रथमं मण्डलं[३४] प्रकल्प्य गोमयेनोपलेपनं कुर्यात्। शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतासितैरष्टदलं लिखेत्। मण्डलञ्च चतुरस्रं भवेत्। तस्मिन् पीठे च बृहदाकारं कूर्मं महामण्डूकं कालाग्निसंज्ञकं रुद्रञ्च प्रपूजयेत्। मध्ये च साध्यमालिख्य कालीबीजानि लिखेत्। गायत्र्या च वेष्टयेत्। फलविशेषप्राप्त्यर्थं जपविधानमपि वर्तते। तान्त्रिक गायत्रीमन्त्रो[३५] यथा—अङ्गाकुलायै[३६] विद्महे मदनातुरायै धीमहि तन्नः कामकलाकाली प्रचोदयात्।

ततश्च बृहद्विधानमुपवर्णितं[३७] वर्तते। तदनन्तर[३८] नैवेद्यनिवेदनम्—

अन्नं पानञ्च नैवेद्यं बलिदानं तथैव च।
रक्तं मासं मनोरम्यामामां पक्वं पृथक्–पृथक्।। *इत्यादिः।*

द्रव्येण[३९] सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् इत्यनेन सात्त्विकी पूजा विहिता ब्राह्मणेभ्यः। एवमेव क्षत्रियादीनामपि[४०] विशेषेण दर्शिता। अर्पणीयमश्मनां[४१] वर्तते निर्देशो यथा—

कृष्णसारं तथा छागं मृगान् नानाविधानपि।
मेषञ्च महिषं घृष्टिं तथा पञ्चनखानपि।।
कपोतं टिट्टिभं हंसं चक्रवाकं च लावकम्।
शालिं तित्तिरिं मत्स्यान् कलविंकं चकोरकम्।
अनुक्तं नैव दातव्यं द्विजवर्यैः कदाचन।।

क्षत्रियाणां विशेषः—

सिंहं व्याघ्रं नरे[४२] तद्वत् क्षत्रियः परिकल्पयेत्।
विहाय कृष्णसारञ्च क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः।।

साधकस्य जात्यनुरूपनिषिद्धा अपि पशवः सन्ति, यथा—

सिंहं व्याघ्रं नरं[४३] हत्वा ब्राह्मणे ब्रह्महा भवेत्।
मूषं मार्जारकं चाषं शूद्रो दत्त्वा पतत्यधः।।

बलिकृत्यसम्पादनविधिर्यथा—

चन्द्रहासेन[४४] खड्गेन हन्यादेकप्रहारत:।
उत्थाय हननं कुर्यान्नोपविश्य कदाचन।
स्वहस्ते पशुं दत्त्वा पशुयोनिमवाप्नुयात्।।

निषिद्धबलिनिर्देशोऽपि[४५] 'विच त्रिपक्षत:' इत्यारम्भ्य कदाचिदपि नो चरेत् इत्यन्तं वर्तते। पशुविषयेऽनुकल्पस्थापि वर्तते विधानम्,[४६] यथा—

इक्षुदण्डश्च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्।
क्षीरपिण्डै: शालिचूर्णै: पशुं कृत्वा चरेद् बलिम्।।
तत्तत्फलविशेषेण तत्तत्पशुमुपानयेत्।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्कटीम्।।

तदनन्तरं ताम्बूलार्पणं कार्यम्। यथाचोक्तम्—

जातीकोषफलैलावलवङ्गमृगनाभियुग्।[४७]
कर्पूरशकलोन्मिश्रं ताम्बूलं कल्पयेत्तत:।।

अर्पणमन्त्रश्च[४८]—

पातालतलसम्भूतं सर्वोपरस्करसंयुतम्।
देवि! कामकलाकालि! त्वं ताम्बूलं गृहाण मे।।

तत: साधकोत्तम: युवतीं सन्तोष्य प्रजपेत्। ब्राह्मणस्य कृते स्वयोषादीना वर्तते निषेध:, यथा—

स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य द्विजो जपेत्।[४९]
लोभाद् यदि चरेत देवमधो याति द्विजस्तदा।।
इहामुत्र फलं नास्ति हीनायुरपि जायते।
देवत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रभार्याप्रयोगत:।
तत्क्षणाज्जायते वामो ब्राह्मणो नात्र संशय:।।
स्वकीयां परकीयां वा सामान्यवनितां तथा।
जपेयुस्तां समाकृष्य क्षत्रविट्शूद्रजातया:।।

कासाञ्चन[५०] सुन्दरीणां निषेधोऽपि, यथा—

ऋषिकन्यां न चाकर्षेन्मद्यपानां च कन्यकाम्।
अन्त्यजानां स्त्रियं वापि व्रतस्थानां स्त्रियं तथा।
गुर्वङ्गनां गुरो: पत्नीं सगोत्रां शरणागताम्।
शिष्ययोषां न चाकर्षेत् बालापत्यां तथा पुन:।

ग्राह्या[५१] सुन्दरी, यथा—

साधुशीलां सुभव्यां च समाकृष्यार्चनं चरेत्।
पूजाकाले च देवेशि विकारं वर्जयेत्सदा।।
विकारात्सिद्धिहानिः स्यात्साधकस्य न संशयः।

प्रयोगानन्तरं[५२] ता विसर्जयेत्। विसर्जनप्रकारश्च यथा—

जपं समर्पयेत्तस्यै मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रदक्षिणमथो चरेत्।।
ततश्च स्तोत्रपाठादि कुर्यात्साधकसत्तमः।
सहस्रनामस्तोत्रञ्च कवचं चान्वहं पठेत्।।
प्राणायामं षडङ्गञ्च विधाय तदनन्तरम्।
आत्मानं देवतारूपं विचिन्त्यैनां विसर्जयेत्।।

विधानेन पूजयेत्। तत एव फल प्राप्तिबोध्या, नान्यथा।

सन्दर्भ

१. *मनुस्मृतिः* 2.6
२. *बृहदारण्यक उपनिषद्* 4.4.11
३. *पा.सू.* 4.2.24
४. *गौ.सू.प्र.* 1.3.1.1 सू. 1
५. *म.का.सं.भू.*, पृ. 5
६. *मुण्डमालातन्त्र पटल*–2
७. *निर्वाणतन्त्रपटल*–2
८. *गन्धर्वतन्त्र पटल*–2
९. *श्यामारत्न*
१०. *गुह्यकाली खण्डे* पटल–10
११. *गु.का.* पटल–10
१२. *म.का.* संहिता
१३. *म.का.* संहिता
१४. *तत्रैव* 2.51
१५. *तत्रैव* 1–47
१६. *तत्रैव* 5.8
१७. *तत्रैव* 5.11
१८. तत्रैव 5.12
१९. तत्रैव 5.14
२०. तत्रैव 5.26–29

२१. तत्रैव 5.30-32
२२. तत्रैव 5.34-36
२३. तत्रैव 5.37-41
२४. तत्रैव 5.42-46
२५. तत्रैव 5.47-52
२६. तत्रैव 5.53-55
२७. तत्रैव 5.56-60
२८. तत्रैव 5-61-65
२९. तत्रैव 5.66-69
३०. तत्रैव 5.67
३१. तत्रैव 5.70-75
३२. तत्रैव 5.76
३३. तत्रैव 5.77-88
३४. तत्रैव 5.89
३५. तत्रैव 5.90-95
३६. तत्रैव 5.96
३७. तत्रैव5.97-119
३८. तत्रैव 5.120-122
३९. तत्रैव 5.123
४०. तत्रैव 5.124-127
४१. तत्रैव 5.127-129
४२. तत्रैव 5.130
४३. तत्रैव 5.131
४४. तत्रैव 5.132
४५. तत्रैव 5.132-135
४६. तत्रैव 136-137
४७. तत्रैव 5.138
४८. तत्रैव 5.139
४९. तत्रैव 5.141-144
५०. तत्रैव 5.145-146
५१. तत्रैव 5.147-148
५२. तत्रैव 5.149-151

645 ए, सूर्यनगर, गोपालपुरा बायपास,
जयपुर।

मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र के स्वरूप की विवेचना

डॉ. चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह

मनुस्मृति के टीकाकार कल्लूकभट्ट ने एक स्थान पर लिखा है—

वैदिकी–तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुतिः कीर्त्तिता।

इस वचन के अनुसार तन्त्र को भी एक प्रकार से श्रुति ही कहा जा सकता है क्योंकि वह भी किन्हीं आचार्यों द्वारा कहा गया और किन्हीं शिष्यों के द्वारा सुनकर ग्रहण किया गया है। यद्यपि किसी श्रुति–ग्रन्थ में अर्थात् वैदिक वाङ्मय में तन्त्र का विधान प्राप्त नहीं होता तथापि जैसे मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों के दर्शन किए थे वैसे ही तन्त्र–शास्त्रियों ने भी दर्शन किया होगा और तभी उसके स्वरूप का वर्णन किया होगा। केवल रहस्य की बात यही है कि जैसे वैदिक मन्त्रों के साथ मन्त्र के देवता, ऋषि, छन्द और विनियोग का विवरण आवश्यक माना गया है वैसे किसी तन्त्र अथवा महाविद्या के मन्त्र के साथ ऋषि अर्थात् मन्त्र–द्रष्टा, छन्द, देवता और विनियोग का विवरण प्राप्त होता है। विनियोग के सम्बन्ध में भी यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि किसी भी महाविद्या का अनुष्ठान, उसकी उपासना और साधना किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही की जाती है, सब महाविद्याओं की साधना सब प्रकार के प्रयोजनों के लिए नहीं की जाती।

दूसरी विशेष ज्ञातव्य बात यह है कि तन्त्र की साधना वैदिक मन्त्रों के जप के समान सामान्य रूप से नहीं की जाती। प्रत्येक महाविद्या, महाशक्ति या योगिनी की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के आसनों, मालाओं, वेशों, जप और साधना के समय तथा गुह्य स्थान का विधान है। किसी भी प्रकार की तान्त्रिक साधना ऐसे किसी स्थान में करने का बड़ा भारी निषेध है, आस–पास के लोग देखते हों, कोलाहल हो या कोई झाँककर भी अनुष्ठान की प्रक्रिया को देख पा सकता हो।

इसीलिए तान्त्रिक साधना को गुह्य–साधना कहा गया है जिसमें पहले तो विशेष महाविद्या या महाशक्ति की उपासना के विधान के अनुसार गुरु द्वारा उपदिष्ट समय तक जप करे और जब गुरु यह समझ ले कि अब शिष्य को गुह्य मन्त्र का उपदेश दिया जा सकता है और चालीस दिन तक विशिष्ट महाविद्या या महाशक्ति के अनुसार पूर्ण विधि–विधान के साथ गुह्य मन्त्र ग्रहण करने के योग्य हो गया है तब वह उस विशेष महाविद्या या महाशक्ति गुह्य मन्त्र तीन बार दाहिने कान में तीन प्रकार से दें—पहली बार मन्त्र को तीन खण्डों में, दूसरी बार दो खण्डों में और तीसरी बार पूर्ण रूप से मन्त्र देते समय तान्त्रिक गुरु निरन्तर अपना दाहिना हाथ शिष्य के सिर पर रखकर बाएँ हाथ से उसके दोनों हाथ पकड़े रखता है और मन्त्र दे चुकने पर उसी प्रकार सिर पर हाथ रखे हुए और दोनों हाथ पकड़े हुए अस्फुट वाणी से केवल ओठ हिलाकर किन्हीं अन्य गुप्त मन्त्रों का

लगभग आधा घंटे पाठ करता है। ये गुह्य मन्त्र तथा गुप्त मन्त्र केवल गुरु ही जानता है, कहीं लिखा नहीं मिलता और न लिखे जाने का विधान ही है। वह केवल श्रुत होता है इसलिये उसे श्रुति भी कह सकते हैं। वैदिक श्रुति और तान्त्रिक श्रुति में अन्तर यही है कि वैदिक मन्त्र तो स्फुट वाणी में भी कह सकते हैं किन्तु तान्त्रिक गुह्य मन्त्र अस्फुट वाणी में केवल परीक्षित साधक को ही चुपचाप कान में फुसफुसाए जाते हैं और साधक भी कभी स्फुट वाणी में उसे नहीं बाल सकता इसलिये तन्त्र शास्त्र को गुह्य-शास्त्र कहते हैं। इसी गोपनीयता के कारण ही तन्त्र शास्त्र के गुह्य मन्त्रों का पूर्णत: लोप हो गया है।

भारतीय तन्त्र-शास्त्र के अनुसार विभिन्न महाविद्या या महाशक्ति को जगाने, उसकी झलक पाने, दर्शन पाने के लिए दिन और रात के आठ प्रहरों में अलग-अलग मुहूर्त्त (दो-दो घड़ी का समय) निहित है। उसी विशेष समय में साधना प्रारम्भ करके उसी विशेष मुहूर्त्त में एक साधना पूर्ण करनी होती है। इस बीच न तो साधक आसन छोड़ सकता है न कुछ खा-पी सकता है। इस प्रकार चालीस बार (मण्डलावधि) साधना करने पर महाविद्या या सिद्ध हो जाती है। इस अवधि में गुरु भी निरन्तर अपने साधक शिष्य के पास ही बैठा रहता है या उसकी देखभाल करता रहता है क्योंकि किसी भी समय शिष्य की साधना में किसी प्रकार की बाधा, असुविधा या उपद्रव होने की आशंका बनी रहती है जिसे केवल गुरु ही दूर कर सकता है किसी अन्य विधि से उसका उपचार नहीं हो सकता। तत्काल उपचार न होने पर साधना भी भंग हो जाती है और साधक को किसी प्रकार का उन्माद अथवा मानसिक या शारीरिक भयंकर रोग भी हो सकता है।

मानव मात्र सुख, शान्ति और समृद्धि चाहता है। इस प्रकार का सुख शान्ति और समृद्धि चाहने वाले लोग दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो भौतिक सुख और समृद्धि पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं और उसी से उन्हें इष्ट शान्ति भी मिलती है। दूसरे प्रकार के सन्त पुरुष वे हैं जो भौतिक सुख और समृद्धि प्राप्त भी करते हैं उसे भी वे दूसरों के कल्याण में ही लगाना चाहते हैं। इच्छित शान्ति, सुख और समृद्धि प्राप्त करने के लिए कुछ लोग जप-तप, पूजा-पाठ, हवन-अनुष्ठान आदि करते हैं या कराते हैं अथवा अन्य शक्तियों का आश्रय लेकर उनसे अपनी मनोकामना को पूर्ण करते हैं।

तान्त्रिक कहलाने वाले बहुत-से लोग, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन की अभिचार-क्रियाएँ करने की डींग भी हाँकते हैं, किन्तु अभिचार-क्रियाओं का तन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है और वह तन्त्र से अलग दूषित क्रिया मानी जाती है। तान्त्रिक न तो धन संग्रह करता है और देने पर भी धन लेता है, क्योंकि उसे तो सब कुछ यों ही प्राप्त हुआ रहता है। यदि वह लोभ करे तो लोभ उत्पन्न होते ही उसकी सम्पूर्ण शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।

जो व्यक्ति कोई भी मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह निर्लोभ होकर प्रत्येक शरणागत का कल्याण कर सकता है। इस शोध लेख में तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र की विवेचना का प्रयास किया जा रहा है कि लोभ के कारण कोई भी शक्ति कारगर सिद्ध नहीं होती है। लोभियों के कारण तान्त्रिक व्यवस्था बदनाम हो गयी है, जिसका स्वरूप वर्तमान में दिखायी देता है।

प्राचीनकाल में अर्थात् वैदिक, स्मृति और पौराणिक काल में और उसके पश्चात् भी यवनों के आक्रमण और शासन-तन्त्र स्थापित हो जाने तक अनेक प्रकार की शारीरिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, लौकिक और सार्वजनिक बहुत-सी बाधाओं और विपत्तियों का निराकरण करने के लिए तीन उपायों का अवलम्ब लिया जाता

था—मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र। *अथर्ववेद* में इन्हीं सब बाधाओं और विपत्तियों को दूर करने के लिए अनेक मन्त्र दिए हुए हैं जिनका निर्दिष्ट विधि से जप करने से महामारी, बिजली, भूकम्प, सूखा (अनावृष्टि), बाढ़ (अतिवृष्टि), पशुओं के रोग, शत्रुओं का आक्रमण आदि अनेक विपत्तियों का तथा व्यक्तिगत दरिद्रता, पुत्र-हीनता, रोग, शोक, मानसिक व्यथा दूर हो सकती है किन्तु मन्त्र का प्रयोग करने वाले के लिए कठोर नियम यह था कि मन्त्र का प्रयोग करने के लिए वे कोई पारिश्रमिक नहीं ले सकते थे। अभी सर्प या बिच्छू का विष झाड़ने वाले लोग मन्त्र के प्रयोग का कोई पारिश्रमिक नहीं लेते। सुनते ही स्वयं वहाँ पहुँच जाते हैं, उपचार करते हैं और अपने ही व्यय से लौट आते हैं क्योंकि पारिश्रमिक के रूप में धन लेते ही मन्त्र का प्रभाव नष्ट हो जाता है। बहुत-से लोग मन्त्र से आग बाँधते हैं अर्थात् उन पर आग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे खौलते हुए तेल में हाथ डाल देते हैं, हाथ चलाते हैं और मैसूर में विजयादशमी के दिन कड़ग उत्सव में एक विशेष परिवार का सदस्य बिना किसी प्रकार का सहारा (इँडुवा) लगाए सिर पर भरा हुआ मटका रखकर दिन-भर नाचता हुआ सारे नगर में घूमता है। इस प्रकार मन्त्रों के चमत्कार आज भी देखे जा सकते हैं। मन्त्र सिद्ध करने के लिए या तो साधना करनी पड़ती है या किसी सिद्ध के द्वारा शक्तिपात होने पर वह शक्ति आ जाती है। कभी-कभी एक परिवार को ही शक्ति दे दी जाती है किन्तु जिसे शक्ति दी जाती है उसे विशेष नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यदि शिथिलता, अनियमितता और असंयम आ जाता है तब वह शक्ति समाप्त हो जाती है। बादल की कड़क रोकने, वर्षा रोकने या वर्षा होने के लिए भूत-प्रेत-बाधा दूर करने के लिए अनेक मन्त्र हैं और जिसे वे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं वह केवल देखने, स्पर्श अथवा शान्ति-जल अभिमन्त्रित कर देने मात्र से बाधा दूर कर देता है। यद्यपि मृत्यु कोई टाल नहीं सकता, वह अवश्यम्भावी है किन्तु ऐसे भी मन्त्र हैं जिनके प्रयोग से मन्त्रसिद्ध को अग्नि जला नहीं सकती, पानी डुबो नहीं सकता। दुर्योधन को जलस्तम्भ विद्या आती थी इसलिये वह बहुत समय तक महाभारत के युद्ध के पश्चात् पानी में छिपा बैठा रहा। मन्त्र के अतिरिक्त पातिव्रत तेज अथवा मन्त्र के प्रभाव से भी ऐसी शक्ति आ जाती है कि अग्नि, जल, वायु किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। पातिव्रत के तेज से ही सीताजी को आग नहीं छू सकी। केवल इतने ही प्रयोजनों के लिए ही नहीं, सब प्रकार की कामना सिद्धि के लिए भी अनेक मन्त्र विद्यमान हैं। यहाँ तक कि कुछ समय के लिए मृत्यु को भी टाला जा सकता है, किन्तु मन्त्र का जप करने वाला परम सात्त्विक और आस्तिक होना चाहिए। *छान्दोग्य-उपनिषद्* में कहा गया है—**'आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'** (खाने-पीने की शुद्धि होने से जीव की शुद्धि होती है)। जिस व्यक्ति का खान-पान राजसी और तामसी हो उसका जपा हुआ कोई भी मन्त्र सफल नहीं होता, साथ ही जो व्यक्ति लोभ से अर्थात् पारिश्रमिक निश्चित करके जल करता है अथवा इस लोभ से करता है कि मुझे इतना धन मिलेगा, उसका किया हुआ पाठ सर्वथा निष्फल होता है इसलिए मन्त्र उसी व्यक्ति को जपना चाहिए अथवा उसी व्यक्ति से जपवाना चाहिए जिसका जीवन परम सात्त्विक हो, जिसके मन में लोभ न हो, जो अत्यन्त श्रद्धा और आस्था के साथ जप करे और जो दक्षिणा मिले उसी से तृप्त और तुष्ट हो जाये।

तन्त्र के अन्तर्गत औषधियों का प्रयोग भी सम्मिलित है। यहाँ तक कि आयुर्वेद में रोग दूर करने की औषधियों के प्रयोग को अगद-तन्त्र ही कहते हैं। इसके अतिरिक्त, विशेष प्रयोजनों के लिये जो औषधियों का प्रयोग होता है वह भी तन्त्र के अन्तर्गत है जैसे अपामार्ग (चिर्चिटा) की जड़ पानी में घिसकर माथे पर

लगा लेने से निश्चय विजय होती है और जिससे काम कराना होता है वह इच्छित काम कर देता है। इस प्रकार के सैकड़ों प्रयोग हैं जिनसे अपना काम साधा जा सकता है, किसी भी व्यक्ति को वश में किया जा सकता है, बाधाएँ दूर की जा सकती हैं और कष्ट दूर किए जा सकते हैं। तन्त्र के प्रयोग में निर्लोभी होना नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है। लोभ की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

धन कमाने की इच्छा से किसी के कल्याण के लिए धन कमाने की इच्छा करना, दूसरे का कल्याण करने के लिए धन माँगना या ठेका लेना, इस आशा से किसी का हित करना कि वह मुझे धन देगा, दिया हुआ धन धोखे से कहीं और रखवाना या किसी मूर्त्ति पर चढ़वाना और फिर उसका प्रयोग अपने या अपने परिवार के लिए करना अथवा किसी और की प्रेरणा देकर अपने लिए धन प्राप्त करना अथवा यह कहना कि मैं तो कुछ लेता-देता नहीं, अमुक को दे देना या यह कहना कि जो श्रद्धा हो चढ़ा जाओ, यह सब व्यवहार के लोभ के अन्तर्गत आता है।

यन्त्र भी तीन प्रकार के होते हैं—अंकयन्त्र, शब्द या बीज-यन्त्र और काष्ठ-धातु-प्रस्तर यन्त्र। अंक-यन्त्र में किसी विशेष क्रम से अंक लिखे जाते हैं जिन्हें अनार के कलम से लाल रोशनाई से भोजपत्र पर या कागज पर लिखकर किसी व्यक्ति को देने से या भीत पर लिख देने से लाभ होता है। जैसे सत्ताईस का यन्त्र, बीसा-यन्त्र या पन्द्रह का यन्त्र जो दीवाली के दिन लोग अपनी गद्दी पर लिखते हैं। इस प्रकार के अंक-यन्त्रों में कुछ तो ऐसे हैं जिनके अंक ऊपर से नीचे, बाएँ से दाएँ अथवा आड़े तिरछे जोड़ने से एक ही गणना मिलती है, कुछ ऐसे हैं जिनमें एक विशेष क्रम से अनेक अंक अंकित होते हैं। जैसे 27 कोष्ठों का यन्त्र जिसमें 27 कोष्ठ ऊपर से नीचे और 27 दाएँ से बाएँ होते हैं। इस प्रकार का यन्त्र जिसके घर में हो उसे कभी धन की कमी नहीं होती। श्रीनारायण स्वामी ने इस प्रकार के कई सौ यन्त्र बनाए थे जिनमें से कुछ का विवरण तो प्राप्त है और कुछ केवल अंकित मात्र ही हैं।

शब्द-यन्त्र या बीज-यन्त्र की विधि यह है कि कुछ विशेष बीज या अक्षर अनार के कलम से भोजपत्र या कागजपत्र लाल रोशनाई से रविवार के दिन दोपहर अभिजित् नक्षत्र में (ग्यारह बजकर छत्तीस मिनट से बारह बजकर चौबीस मिनट तक) उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, रोहिणी या पुष्य नक्षत्र में लिखकर या लिखा रक्खा हुआ दे दिया जाये तो ग्रहणकरने वाले का कष्ट दूर हो जाता है और उसकी मन:कामना पूर्ण हो जाती है। विभिन्न कार्यों के लिये इस प्रकार के अनेक बीजाक्षर यन्त्रों के निर्माण के लिए ग्रन्थों में प्राप्त हो जाते हैं और उनसे निर्दिष्ट फल भी प्राप्त हो जाते हैं किन्तु उसके लिये भी यह नियम है कि ये बीज-यन्त्र लिखकर देने का अधिकार भी उसे ही है जिसे वह बीजाक्षर सिद्ध हो अथवा जो पुरुष श्रद्धावान्, आस्तिक और निर्लोभी हो। इस प्रकार के बीज-यन्त्र के लिए किसी प्रकार कोई भी द्रव्य स्वीकार नहीं करना होता क्योंकि द्रव्य लेते ही उसका फल समाप्त हो जाता है।

यन्त्रों के अतिरिक्त जीवन में काम आने वाले वे सब लकड़ी, पत्थर और धातु से बने हुए यन्त्र हैं जो हमारे नित्य और नैमित्तिक जीवन में काम आते हैं। जैसे—गाड़ी, ढोल, वाद्य-यन्त्र, अनेक प्रकार के पात्र,

रई तथा अन्य साधनों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र ओर वर्तमानकालीन सब मशीनें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। लगभग सौ बरस पूर्व तक हजारों वर्षों से एक ही प्रकार के काष्ठ, पत्थर या धातु के यन्त्र काम में आते रहे किन्तु गैस, बिजली आदि के कारण ऐसे अनेक प्रकार के काष्ठ, पत्थर या धातु के यन्त्र बन गए हैं जिनके कारण आज का मानव-जीव पूर्णत: यन्त्रबद्ध हो गया है और अभी इस यन्त्र-चालित जीवन-पद्धति को और भी अधिक यान्त्रिक बनाने के लिए दिन-रात नये-नये प्रयोग हो रहे हैं जिनमें एक ओर तो मानव-जीवन को सुखी और सरल बनाने के लिए नये-नये यन्त्र प्रयोग हो रहे हैं, दूसरी ओर मानवता के विनाश के लिए अनेक प्रकार के बम, घातक यन्त्र और विध्वंसकारी साधन निर्मित किए जा रहे हैं। यद्यपि कई बार अनेक देशों के नेताओं ने मिलकर विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों काप्रयोग रोकने की चेष्टा की तथापि उसका परिणाम कुछ नहीं हुआ और सभी देश अपने सामर्थ्य के अनुसार या अपनी सुरक्षा के लिए शत्रु-देशों को त्रस्त करने के लिए इस प्रकार का प्रयास करते जा रहे हैं। अनेक प्रकार के यान (मोटरकार, विमान, ट्रक, बस आदि) इतने रूपों, आकारों, प्रकारों में नये-नये ढंग से प्रतिवर्ष निर्मित किए जा रहे हैं, मनुष्य को स्वस्थ रखने, उसके रोग दूर करने के लिए अनेक प्रकार की औषधियाँ, रोग-परीक्षण करने और निदान के लिए एक्स-रे, अल्ट्रा-साउण्ड आदि अनेक साधन प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनसे यह भी जाना जा सकता है कि गर्भ में बालक है या बालिका किन्तु उसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि यदि गर्भ में बालिका है तो उसका निर्गम करा दिया जाता है।

इस प्रकार यन्त्रों के निर्माण की यह प्रक्रिया कितने रूपों में व्यक्त होती चलेगी और उससे मानव-जीवन का कितना भला या बुरा होगा यह बता सकना सम्भव नहीं है। यह प्रगति जिस गति से चल रही है वह अप्रतिहत है। विचारणीय बात यही है कि इस तीव्र गति का परिणाम मानव-जीवन के लिए श्रेयस्कर होगा या विध्वंसकारी। अगर श्रेयस्कर होगा तो तन्त्र के प्रयोगों में निर्लोभी होना नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है जिसे भी मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र को लोभ की दृष्टि से प्रयोग किया जायेगा तो मानव गति को विध्वंस में परिवर्तित कर दिया जायेगा।

सन्दर्भ

1. सीताराम चतुर्वेदी — *तन्त्र विज्ञान और साधना*
2. पण्डित ब्रजबल्लभ द्विवेदी — *आगम और तन्त्र शास्त्र*
3. डॉ. परमहंस मिश्र — *तन्त्रसार*
4. पण्डित श्री चक्रेश्वर भट्टाचार्य दले — *शाक्त दर्शनम्*
5. सूर्यप्रकाश व्यास — *तन्त्र विमर्श*

शोधछात्र,
दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।